हिन्दू-धर्म के ज्ञान-मय क्रिया-पक्ष की शोध-पूर्ण प्रस्तुति

'कौल-कल्पतरु'

चण्डी

(सं० १९९९ वि०-सन् १९४२ ई० से प्रकाशित)

परा-शक्ति भगवती चण्डिका

(देखिए, पृष्ठ ९)

वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण और दर्शन आदि शास्त्र पढ़ने, देखने, सुनने और विचारने से यह निर्णय प्राप्त होता है कि भगवती चण्डिका ही सर्व-प्रथम सृष्टि में पूजी गईं और अब भी पूजी जाती हैं तथा आगे भी पूजी जाएँगी और हम सबकी वही उपास्य देवता हैं। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि देवों ने और यक्ष, किन्नर, सिद्ध चारणों ने तथा भूतादि ने भी इन्हीं की आराधना की है। इसमें सन्देह नहीं कि सबमें इन्हीं की सत्ता है। भगवती चण्डिका से पर कोई तत्त्व नहीं है। यदि है, तो यही एक है। यही आत्मा, यही परमात्मा, यही ईश्वर, यही जीव, यही स्थूल, यही सूक्ष्म, यही कारण, यही कार्य, यही इस पार और यही उस पार है। पर-ब्रह्म के व्यावहारिक नाम ही महा-माया, विद्या, प्रकृति, अम्बा, भगवती, शिवा, शक्ति, दुर्गा, चण्डिका हैं।

यह प्रति ४-८० रु० / वार्षिक मूल्य ५०-०० रु०

पुकार

• राजदुलारी प्रेमकुमारी जी

रीति गई हिन्दुआन की, हाय ! औ नीति सबै शुभ-धर्म भुलाई ।।
हीत पुनीत भये छल लम्पट । प्रीति नहीं कहुँ देत दिखाई ।।
ईति को राज अनीति को सासन । चीत की चैन अतीत गँवाई ।।
भीत भयो शिशु 'प्रेम' पुकारत । तू बिसरे जन को जनि माई ।।१
अब मत जननी विलम लगाओ—धाओ, शिशु की विपद नसाओ ।
अधम-उधारिनि, पतितन तारिनि, आओ, जग-जञ्जाल नसाओ ।।
जब-जब सुत पर सङ्कट आए, तुमहि बचाए, मत बिसराओ ।
तुम बिन जग में और सहारा, कौन कहाँ अब मत बहराओ ।।
अति सुखकारिनि, 'प्रेम' दुलारिनि, मङ्गल-मयि, अब जल्दी आओ ।।२

• • •

माँ, कैसे तुम्हें मनाऊँ ?

• श्री देवेन्द्रनाथ भट्टाचार्य

माँ, कैसे तुम्हें मनाऊँ मैं ।

दग्ध हृदय विकृत मस्तक है, अज्ञान का हूँ आगार बना ।।
नहीं कर्म - धर्म का ज्ञान मुझे, पशुओं से भी नीच बना ।
अब तुम्हीं कहो माँ ! जाऊँ कहाँ मैं, ज्ञान कहाँ से पाऊँ मैं ।।१
माँ ! जानूँ केवल पशु-भाषा मैं, वेद - वाणि का ज्ञान नहीं ।
तुम्हीं सिखा दो आकर माता, या तुम्हें भी इसका भान नहीं ।।
अज्ञान - तिमिर में आन फँसा हूँ, राह कहाँ से पाऊँ मैं ।।२
कोई कहे माँ जप से प्रसन्न तू, कोई कहे पाठों से ।
बोध नहीं इनमें से किसी का, बिलखूँ मैं तो हृदय से ।।
रुदन है आता रुदन कर रहा, और क्या तुझे सुनाऊँ मैं ।।३
पुत्र कु - पुत्र तो हो जाता है, माता कु - माता न होती ।
लक्ष दोष को क्षमा करे और, हृदय लगाकर सोती ।।
अबकी बार क्षमा कर दो माँ ! फिर न तुम्हें दुखाऊँ मैं ।।४
आओ माता ! अब तो आओ, तारो इस भव - सागर से ।
माया - मोह से लिपट रहा हूँ, डूब रहा दुख - गागर में ।
चलने तक की शक्ति नहीं माँ, खोज कहाँ से पाऊँ मैं ।।

१ सम्पादकीय : 'श्रीछाया-पीठ' का अनूठा आह्वान १
२ ब्रह्म-विद्या से ! परम पूज्य श्री स्वामी सदाशिव तीर्थ 'ब्रह्म-विद्या' ३
३ दक्षिणाम्नाय की शाक्त परम्परा में--हरि-हर-पुत्र की उपासना : श्री रघुराम नरसिंह ६
४ हमारी उपास्य देवता परा-शक्ति भगवती चण्डिका : 'आम्नाय-धुरन्धर' पण्डित हरिशास्त्री दाधीच ९
५ श्रीचण्डी-चालीसा एवं श्रीचण्डी-अष्टक : 'कवि-पुष्कर शास्त्री' श्री पण्डित जगन्नारायणदेव शर्मा २०
६ मेरे गुरुदेव 'कुलावधूत' स्वामी चन्द्रनाथ योगेश्वर : श्री अशोककुमार श्रीवास्तव, आजमगढ़ २४
७ राजस्थान के मौलिक दार्शनिक मनीषी श्रोत्रिय जी : 'कुल-भूषण' पण्डित रमादत्त शुक्ल, प्रयाग २६
८ मातृ-चरण से लाभ : पण्डित श्री ललन पाण्डेय २८
९ गुप्तावतार बाबाश्री के प्रवचनों के आधार पर : स्त्री और पुरुष ३१

स-म्पा-द-की-य

'श्री छाया-पीठ' का अनूठा आह्वान

'तमिलनाडु' के 'त्रिची' जनपद के 'मुसिरी' तालुके में स्थित 'तिरुइङ्गोमलाई' नामक स्थान में **'श्रीछाया-पीठम्'** अवस्थित है, जिसका सचित्र परिचय 'चण्डी' के ४५ वें वर्ष—सम्वत् २०४३ के आश्विन-कार्तिक अङ्क (अक्टूबर-नवम्बर, १९८६) में प्रकाशित हो चुका है। इस पीठ का सञ्चालन **'श्रीललिता-महिला - समाजम्'** नामक संस्था द्वारा सन् १९५४ से सुचारु रूप से होता आ रहा है।

संस्था के संस्थापक, परम पूज्य, वयोवृद्ध ऋषि-कल्प **गुरुदेव श्री स्वामी अद्वयानन्द सरस्वती जी महाराज** ने इस **'शक्ति-पीठ'** में लगभग पाँच फीट ऊँचे **'महा-मेरु - श्रीचक्र - राज'** की अभूत-पूर्व प्रतिष्ठा तो की ही है, उसके विधि-वत् अर्चन हेतु ६४ सिद्ध कुमारी योगिनियों को श्री **'श्रीयन्त्रार्चन'** में पारङ्गत बनाने का अनुपम महत् कार्य भी सम्पन्न किया है। ये पूजनीया योगिनियाँ ६४ उपचारों द्वारा उक्त विशाल **'श्रीचक्र-राज'** का भव्य पूजन इतने कौशल के साथ करती हैं कि देखनेवाले चकित रह जाते हैं और उन्हें अकल्पित रूप से दिव्य भाव की अनुभूति होती है।

'चण्डी' के उक्त अङ्क में विस्तार से **'श्रीछाया-पीठम्'** का सचित्र विवरण प्रकाशित किया गया है। **'श्रीछाया-पीठम्'** से सम्बन्धित छः चित्र भी उक्त अङ्क में संलग्न हैं, जिनसे पीठ की भव्यता के साथ ही 'श्रीमहा-मेरु-पीठम्', परम पूज्य गुरुदेव एवं ब्रह्मचारिणी योगिनियों की दिव्यता का बहुत कुछ ज्ञान पाठकों को हो जाता है। एक मान-चित्र भी उक्त अङ्क के मुख - पृष्ठ पर प्रकाशित है, जिससे 'श्रीछाया-पीठम्' कहाँ है और वहाँ किस मार्ग से पहुँचा जा सकता है, इसका ज्ञान सहज ही हो जाता है।

उक्त संक्षिप्त वर्णन से स्पष्ट है कि भारत में कदाचित् ही **'श्रीछाया - पीठम्'** जैसा अन्य कोई आध्यात्मिक स्थल होगा, जहाँ प्रख्यात **'श्रीयन्त्र-राज'** का इस प्रकार का दिव्यार्चन होता हो।

'चण्डी' के पाठकों को जानकर विशेष प्रसन्नता होगी कि 'पराम्बा श्रीललिताम्बा' के **'परम सिद्ध आचार्य-शिरोमणि'** पूज्य श्री स्वामी अद्वयानन्द जी सरस्वती **द्वारा देश के चुने हुए** ३०० **श्रीविद्यो-पासकों का सादर आह्वान किया गया है कि वे आगामी** 'वासन्तिक नवरात्र' में **'श्रीछाया - पीठम्'** में **पधारें, जहाँ अष्टमी, नवमी एवं दशमी तिथियों में अर्थात्** १०, ११ **और** १२ **अप्रैल, १९९२ को उन्हें सम्मानित किया जायगा।** स्पष्ट ही यह **'आह्वान'** अपने ढँग का अनूठा ही है। भारत के आध्यात्मिक इति-हास में कदाचित् यह पहला अभूत-पूर्व आयोजन होगा, जिसमें सार्वजनिक रूप से भव्य **'महा - मेरु श्री**

श्रीचक्र-राज' का '**६४ अनुपम योगिनियों**' द्वारा विलक्षण दिव्यार्चन देखने का अवसर भक्त-जनों को मिलेगा। साथ ही देश के ३०० पूर्णाभिषिक्त श्रीविद्योपासकों के दर्शनों का दुर्लभ सौभाग्य भी प्राप्त होगा।

'३०० श्रीविद्योपासकों' **के सम्मान की विधि प्रख्यात** 'श्रीललिताम्बा त्रिशती स्तवः' **की** 'फल-श्रुति' **में निम्न प्रकार निर्दिष्ट है :**

त्रिशती - नामभिः पश्चाद्, ब्राह्मणान् क्रमशो यजेत्। तैलाभ्यङ्गादिकं दद्याद्, विभवे सति भक्तितः ॥३८
शुक्ल - प्रतिपदाऽऽरभ्य, पौर्णमास्यवधि क्रमात्। दिवसे - दिवसे विप्राः भोज्या विंशति - संख्यया ॥३९
दशभिः पञ्चभिर्वापि, त्रिभिरेकेन वा दिनैः। त्रिंशत् षष्टि-शतं विप्राः, सम्भोज्यास्त्रि - शतं क्रमात् ॥४०
एवं यं कुरुते भक्त्या, जन्म - मध्ये सकृन्नरः। तस्यैव सफलं जन्म, मुक्तिस्तस्य करे स्थिता ॥४१

अर्थात् ३०० नामों से क्रमशः ब्राह्मणों (श्रीविद्यापासकों) का 'पूजन' करना चाहिए। उन्हें सामर्थ्य के अनुसार तैलाभ्यङ्ग आदि देना चाहिए। शुक्ल प्रतिपदा से पूर्णिमा के दिन तक प्रति-दिन क्रमशः २०-२० ब्राह्मणों (श्रीविद्योपासकों) को भोजन कराए। अथवा १०, ५, ३ या १ हो दिन में ३०० श्री-विद्योपासक ब्राह्मणों को उक्त प्रकार सम्मानित करना चाहिए। जो इस प्रकार का '**अनुष्ठान**' अपने जीवन में एक बार भी कर लेता है, उसका जन्म सार्थक हो जाता है और 'मुक्ति' उसके हाथ में होती है।

कहना न होगा कि उक्त 'असाध्य' **अनुष्ठान का सङ्कल्प लेकर** 'श्रीछाया - पीठम्' **के परम पूज्य श्रीगुरुदेव ने एक ऐसा** 'आदर्श' **उपस्थित किया है, जिसका उदाहरण आज तक के आध्यात्मिक इतिहास में खोजने से भी मिलना कठिन है।**

उक्त अभूत-पूर्व 'अनुष्ठान' के साथ ही '**श्रीछाया-पीठम्**' में एक '**साधु-सङ्गम**' का भी आयोजन होगा, जिसमें भगवत्-पाद श्री शङ्कराचार्य की परम्परा के श्रेष्ठ आचार्य उपस्थित होकर अपने प्रवचनों से भक्त-जनों को कृतार्थ करेंगे। यही नहीं, इस अवसर पर पहुँचनेवाले भक्त-जनों को न केवल महात्माओं के पावन दर्शन एवं पवित्र '**श्रीछाया-पीठम्**' के दिव्य 'पूजन' एवं 'साधना-क्रम' के अवलोकन का सौभाग्य प्राप्त होगा, अपितु उक्त 'पीठ' के निकटस्थ '**श्रीरङ्गम्**', '**चट्टानी दुर्ग-मन्दिर**' तथा दक्षिण भारत के अन्य पवित्र तीर्थ-स्थलों के भी दर्शनों का दुर्लभ अवसर मिल सकेगा।

निस्सन्देह, '**श्रीछाया - पीठम्**' के उक्त अनूठे '**आह्वान**' के फल - स्वरूप पूरे भारतीय राष्ट्र को 'शान्ति' एवं 'समृद्धि' की उपलब्धि हो सकेगी। साथ ही, विश्व की समूची मानवता के कल्याण का मार्ग प्रशस्त होगा।

'**चण्डी**' के पाठकों से हमारा विशेष अनुरोध है कि इस '**दुर्लभ आह्वान**' के अभूत-पूर्व महत्त्व को गम्भीर विचार के साथ हृदयङ्गम ही न करें, अपितु '**तन-मन-धन**' से प्रस्तावित '**अनुष्ठान**' एवं '**आयोजन**' को सफल बनाने में यथा - शक्ति अपना सहयोग प्रदान कर पुण्य और यश के भागी बनें। विशेष जानकारी के लिए निम्न पतों में से किसी एक से '**जवाबी कार्ड या टिकट**' के द्वारा सम्पर्क कर सकते हैं—

१ 'सर्व-तन्त्र-स्वतन्त्र' विद्वान् श्री महा-मेधानन्दनाथ, मुख्य सचिव, डी-११७, म्यूजियम फ्लैट्स, भुवनेश्वर (ओड़िसा)–७५१०१४।

२ परम पूज्या योगिनी श्री निर्मलाम्बा सरस्वती, सचिव, 'श्रीललिता महिला समाजम्', पो० तिरुइङ्गोमलाई, मुसिरी तालुका, जिला त्रिची (तमिलनाडु)–६२१२०९। दूरभाष : मुसिरी २६१, एस० टी० डी० ०४३२६।

ब्रह्म - विद्या से !

परम पूज्य श्री स्वामी सदाशिव तीर्थ 'ब्रह्म-विद्या'

[लगभग ४० वर्षों पूर्व प्रस्तुत लेख के प्रणेता वङ्ग-देशीय महात्मा पूज्य श्री स्वामी जी अचानक 'चण्डी'-कार्यालय पधारे थे। उनका वयोवृद्ध तेजस्वी मुख-मण्डल सतत साधना की दीप्ति से जगमगा रहा था। आज इन पंक्तियों के लिखते समय उस छवि का स्मरण आ जाने से हृदय पुलकित हो उठा है। आते ही उन्होंने वङ्ग-भाषा में मुद्रित 'काली - तन्त्र' की प्रति भेंट की और अनुरोध किया कि इसे 'राष्ट्र - भाषा' हिन्दी में प्रकाशित किया जाय। सहर्ष उनकी आज्ञा का पालन किया गया। उक्त तन्त्र के तृतीय संस्करण के 'दो शब्द' के अन्तर्गत पृष्ठ सात पर उनके प्रति कृतज्ञता - पूर्ण श्रद्धाञ्जलि द्रष्टव्य है। उन दिनों वे 'सारनाथ' (वाराणसी) में निवास करते थे और प्रायः 'चण्डी' के लिए अपना प्रसाद लेख-रूप में भेजा करते थे। पाठक स्वयं अनुभव करेंगे कि उनका प्रस्तुत लेख आज भी कितना प्रेरणादायक एवं उद्‌बोधक है। उनकी पुण्य स्मृति को कोटिशः नमन।--सं०]

अम्ब ! मेरी सर्वान्तर्यामिनी परा-माता श्री ब्रह्म-विद्ये ! तेरा पुत्र सदा-शिव तेरे चरण - कमलों में प्रणाम कर निवेदन करता हूँ कि मेरा साहस-सामर्थ्य आयु के साथ ही दिन - दिन अति - वेग से क्षीण होता जा रहा है, जिससे तेरे दर्शन की आशा इस जन्म में नष्ट होती जा रही है। मैं घोर जरा - राक्षसी से आक्रान्त हुआ 'किङ्कर्तव्य-विमूढ़' अब तक इस क्षण-भंगुर शरीर से मुक्त होने के लिए तेरे दर्शन की ही केवल प्रतीक्षा कर रहा हूँ। अब किसी काम में मेरा मन नहीं लगता। क्या ही अच्छा होता कि मैं शरीर छोड़ने के पहिले ही जीवन्मुक्त हो जाता, जिससे शान्ति के साथ मैं मर सकता।

मैं जो ज्ञान-मार्ग से विचलित हुआ भारतवर्ष में जन्म ग्रहण कर कर्म-मार्ग में प्रवृत्त हो दुःख-ही-दुःख भोग रहा हूँ, वह तेरी आज्ञा के उल्लङ्घन से ही। अन्तःकरण में प्रतिबिम्बित इस बाह्य संसार का मैं रूपान्तर बन गया हूँ। इसी कारण सुधा-सिन्धु से परिवृत और चन्द्र-कान्त, सूर्य-कान्त आदि दिव्य मणि-दलों के जाज्वल्यमान शिखरों से चन्द्र-सूर्य की भी प्रभा की उपेक्षा करनेवाले मणि - द्वीप के पारिजात, कल्प-वृक्ष तथा कल्प-लताओं से परिवेष्ठित मेरा **'चिन्तामणि-भवन'** भी मुझे विस्मृत हो गया !

जन्म-मृत्यु के चक्रावर्त से जर्जरित हुआ मैं भव-सागर में डूबता-उतराता महा - कष्ट सहन कर रहा हूँ। अतः इस अन्तिम काल में तेरे दर्शन के लिए लालायित हुआ, अत्यन्त उत्सुक हो, तेरी प्रतीक्षा कर रहा हूँ। तू पुत्र-वत्सा होकर भी दर्शन देने में जो विलम्ब कर रही है, वह मेरे दौर्भाग्य का ही कारण है, परन्तु **'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति'**—यह तेरा हृदयङ्गम सिद्धान्त पालन करना निश्चय ही अनिवार्य सत्य है। क्या यह सिद्धान्त असत्य हो सकता है ?

नहीं ! नहीं ! मेरी प्यारी माँ ! तू मुझको कभी भूल नहीं सकती ! मैं तो अविद्या - वश हताश होकर तुझे भूल जाता हूँ किन्तु तू साक्षात् ब्रह्म-विद्या है। मेरे मरते-मरते भी मुझे नहीं भूलेगी ! अतः मैं निश्चय ही अपराधी हूँ। तभी मेरा हृदय ग्लानि से युक्त हो जाता है और मैं तुझे प्रेमोल्लासित और उत्तेजित करने में चूक जाता हूँ। तू तो मुझे शैशव में रोते हुए सुनकर कभी क्षण मात्र भी विलम्ब नहीं करती थी और तत्क्षण आकर मुझको अपने अङ्क में उठाकर प्यार करती हुई पयोधर-सुधा पिलाने लगती थी ! मैं जानता हूँ कि तेरे असंख्य पुत्र हैं और तू उन सभी का एक समान ही पालन - पोषण करती है,

परन्तु मेरे षोडश-वर्षीय होते ही तूने मेरी रक्षा का भार मुझ पर ही आलम्बित कर मुझे संसार में छोड़ दिया !

मेरे अखण्ड एक-रस विभु महा - काल परम - पिता के क्षण, प्रहर, दिन, रात, मास, वर्ष, युग-युगान्तर-खण्ड अणु-रूप अनन्त-कालों में से एक क्षुद्र विभूति में ही अध्यस्त हुआ मैं नितान्त संसारी जीव बन गया हूँ। अब तो शरीर के साथ ही जीर्ण होता हुआ मैं सर्वाङ्ग-शिथिल हो चुका हूँ। अब तू मुझे इस संसार से उद्धृत कर परम-पिता विभु महा-काल का दर्शन करा दे। तुम्हीं दोनों मेरे सनातन माता-पिता हो। मुझे अलग मत रक्खो। मैं अलग रहकर अब जी नहीं सकूँगा। तेरी पुत्र - वधू पहिले ही तेरे पास पहुँच चुकी है। मुझे यहाँ अकेला कब तक रखोगी ? तुमने आग्रह - पूर्वक मुझे कैलास ले चलने के लिए कई बार अनुरोध किया था, परन्तु हा ! अम्ब ! मैंने तेरी बात नहीं सुनी। इसी से तूने मुझे यहीं छोड़ दिया और अपनी वधू को साथ ले गई।

अब तो तेरी बातों के उल्लङ्घन करने का दुष्परिणाम - फल भोग ही रहा हूँ, परन्तु अम्ब ! तू उदासीन मत रह। अब बीती बात मन से भुला दे। मेरी भूल क्षमा कर, मुझ शरणागत की सुधि ले और दर्शन देकर दिव्य मणि-पर्वत कैलास के शिखर पर ले चल।

तू स्वतन्त्र सगुण ब्रह्म-विद्या निर्गुण ब्रह्म को भी सगुण बना लेती है और स्वयं सहज उसके साथ रमण कर गर्भ-वती हो ब्रह्माण्ड-प्रजा उत्पन्न करती है, जो मल - विक्षेप - आवरण से आत्मा को भी जीव-रूप में अध्यस्त करती है। श्रुति कहती है—**'ज्ञानमेव पर-ब्रह्म'**—अर्थात् ज्ञान ही पर-ब्रह्म है। अतः ज्ञान चेतन है, जड़ नहीं। आत्मा में जब ज्ञान द्वारा 'अहंत्व' (मैं-पन) सम्यक् विलीन हो जाता है, तो अज्ञान के अभाव से ब्रह्म-ज्ञान ही उदय हो जाता है, जो **'ब्रह्म - विद्या'** - संज्ञक है। इसलिए 'ज्ञान' और 'विद्या' एक ही रूप हैं। **'ब्रह्म-विद्या'** तो 'विद्या' और 'अविद्या' से भिन्न है। वे दोनों ही 'ब्रह्म-ज्ञान' होते ही विलीन हो जाते हैं। 'गीता'' ७/४-५ में भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं—

भूमिरापोऽनलो वायुः, खं मनो - बुद्धिरेव च, अहङ्कार इतीयं मे, भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।
अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे परां, जीव - भूतां महा - बाहो ! ययेदं धार्यते जगत् ॥

'अतति सर्वत्र व्याप्नोति इति आत्मा ब्रह्म' अर्थात् आत्मा का अर्थ सर्वत्र व्यापक होने से 'आत्मा' ही 'ब्रह्म' है, जो अन्तः-करण से प्रतिबिम्बित हुआ बाह्य जगत् के रूप में जीव - भक्ता प्रकृति होकर भासित होता है। इसी प्रकृति के लय होने से प्रतिबिम्बित बाह्य जगत् भी लय हो जाता है और केवल नित्य-ब्रह्म अवशिष्ट हो स्वयं प्रकाशित हो जाता है। गोद में लड़का और शहर में ढिंढोरा ! 'आत्माराम' हृदय में हैं और हम उनको बाहर ढूँढ़ते हैं !

आत्मा ही अन्तः-करण में प्रतिबिम्बित जीव है और यह अकेला परिमित आभासित हुआ भी प्रतिबिम्बित बाह्य जगत् का अंश है, जो व्यक्ति-गत प्रतीयमान होता है, जिस प्रकार आदर्श (दर्पण) का चित्र खण्ड प्रतीत होता हुआ भी निर्लेप आकाश ही रहता है। वह केवल आकार से ही परिमित समझ पड़ता है। अज्ञानी जीव जब तक जीव-संसार में 'अहंत्व' को बनाए रहता है, तब तक आत्म-प्रकाश कैसे हो सकता है ?

न **'मैं'** मिटता है, न आत्मा उदय होता है। **'मैं'** का अणु-मात्र भी बना रहना आत्मा के उदय होने में बाधक है। सच्चे हृदय से सर्वज्ञ आत्मा को प्रार्थना सुनाने से अन्तर्यामी आत्मा निश्चय ही सुन लेता है। कहीं बाहर उसको ढूँढ़ना नहीं पड़ता, परन्तु सबसे बढ़कर भगवान् के दर्शन करने का उपाय यह है

कि समस्त जीव-मात्र में अपने को ही देखते-देखते भगवान् को अपना ले। भक्त जिसे देखे, वह भगवान् ही समझ पड़े। लेश-मात्र भी भेद-भाव न रहने पावे। भले ही कोई अन्य जीव भक्त के इस भाव को न माने, किन्तु भक्त अपना आचरण शुद्ध बनाए रक्खे। जहाँ असह्य और असफल वातावरण हो, वहाँ से अन्यत्र चला जाय और अपने सम-दर्शित्व की रक्षा करे। न किसी से प्रतिवाद या प्रतिहिंसा करे और न दुःखी हो। हाँ, उससे उदासीन अवश्य रहे और कठिन दण्ड को भी सहन कर ले।

भगवान् साक्षात् अपरोक्ष हैं, परन्तु बुद्धि के संकुचित होने के कारण ज्ञान का उदय नहीं हो पाता। अहङ्कार के घोर अन्धकार में पड़कर आत्म-ज्ञान से वञ्चित हो जाना पड़ता है और जीव का 'व्यक्तित्व' बना रहता है। अहङ्कार ही वह अभेद्य ग्रन्थि है, जिससे न 'व्यक्तित्व' दूर हो सकता है और न 'विभुत्व' हो प्रकाशित हो पाता है। अन्तः - करण ही आदर्श - वत् जीव को 'सत्य' और 'असत्य' लखाता है।

'ईश्वरार्पित - सर्व - भावादयः समाधि-सिद्धिः' अर्थात् सर्व - भावों को ईश्वर में अर्पण करने से 'समाधि' की सिद्धि होती है। इसीलिए सत्य-हृदय से ईश्वर की शरण लेने से 'अहंत्व' स्वयं आत्मा में लय हो जाता है। मन, बुद्धि, चित्त और अहङ्कार—ये चारों अन्तः - करण हृदय में ही रहते हैं और परमात्मा भी हृदय में रहता है। अतः अन्तः-करण को बाहर संसार में प्रयोग करने से जीवन संसारी बनता है, किन्तु उसी अन्तः-करण को भीतर आत्मा में लगाने से वह ब्रह्म बन जाता है।

संसार के प्रपञ्च में पड़े हुए जीव को उसका मन भगवान् के ध्यान - पूजा के समय में प्रायः सांसारिक विषयों में नाच नचाता रहता है, जिससे जीव विषयी बना रहता है। इसलिए मन जब - जब विषयों में जाय, तब-तब उसे वहाँ से हटाकर भगवान् में ही लगावे। इस प्रकार साधक अपने अभ्यास द्वारा मन को एकाग्र कर निर्विषय हो भगवान् का ध्यान करे, तो मन स्वच्छ आदर्श के समान निर्मल हो जाता है और भगवान् साक्षात् दीख पड़ते हैं। अतः सावधान भक्त अपने मन को कहीं अन्यत्र जाने नहीं देता और 'आत्माराम' में ही निरन्तर मग्न रहता है। जब अभ्यास द्वारा मन भगवान् के चरण-कमलों में पूर्ण आसक्त हो जाता है, तो उपासक भगवान् के भजन-कीर्तन, पूजा-पाठ, जप-तप से अभ्यस्त हुआ, सिद्ध होकर निश्चय ही आत्माराम का दर्शन पा लेता है। तब मन स्वयं ही भगवान् के चरण - कमलों में लीन हो जाता है और भक्त भगवान् को पाकर कृतार्थ हो परमानन्द को प्राप्त होता है।

॥ ॐ तत्सत्। ब्रह्मार्पणमस्तु ॥

श्री-चक्र रहस्य

श्री-चक्र (श्रीयन्त्र) के चक्रों के परिचय, साधना-क्रम, लेखन-विधान हेतु उपयोगी पुस्तक

मूल्य १५.०० रु०

दक्षिणाम्नाय की शाक्त परम्परा में—

हरि-हर-पुत्र की उपासना

• **श्री रघुराम नरसिंह**

दक्षिण भारत का 'श्रृङ्ग-गिरि मठ' प्रख्यात है। उसके पीठाचार्य ब्रह्मीभूत अभिनव-विद्या तीर्थ स्वामी जी एक सिद्ध महा-पुरुष थे। वर्तमान समय में 'मठ' में पूज्य भारती विद्या तीर्थ जी विराजमान हैं। मेरे पूज्य पिता जी (श्री के० पिच्चुमणि अय्यङ्गार) 'चण्डी' के पाठकों के सुपरिचित हैं। तुरीयाश्रम स्वीकार करने से पहले वे 'चण्डी' के सम्पादक महोदय को लिख चुके हैं कि शाक्तों का—विशेष रूप से—जगदम्बा चामुण्डा के सेवकों का सम्मेलन कर्नाटक प्रदेश के बेङ्गलूर श्रृङ्गगिरि या मैसूर में आयोजित करना चाहिए। इस सम्बन्ध में 'चण्डी' के सम्पादक ने उक्त पीठ को पत्र भी लिखा था। उक्त स्थानों में नियमानुसार शक्ति की उपासना करनेवाले कई साधक हैं और सिद्ध - पुरुष हैं। 'चण्डी' के सम्पादक श्रृङ्ग-गिरि के नए आचार्य स्वामी के साथ पुनः पत्र-व्यवहार करेंगे, जिससे '**शाक्त - सम्मेलन**' का आयोजन श्रृङ्ग-गिरि में इस वर्ष अवश्य हो सके।

[लेखक बन्धु का प्रस्ताव स्वागत योग्य है। इस सम्बन्ध में उक्त 'मठ' के वर्तमान आचार्य को पत्र भेजा गया है। प्रगति की सूचना यथा-समय 'चण्डी' में प्रकाशित को जायगी।—सं०]

दक्षिणाम्नाय के अनुसार शक्ति का जागरण करने के अनेक सुलभ मार्ग हैं। उनमें सबसे सहज है—'**शबरी-माता एवं हरिहर-पुत्र की उपासना**'। शबरी-माता की उपासना पर पूज्य पिता जी के लेख '**चण्डी**' में प्रकाशित हो चुके हैं। अतः अब '**हरिहर-पुत्र**' की उपासना पर प्रकाश डाला जाएगा। पहले यह जानना आवश्यक है कि इस उपासना के '**वीजाक्षर**' क्या हैं? उन वीजाक्षरों की '**शक्ति**' कौन-सी है? शीघ्र सिद्धि पाने के लिए '**कीलक-मन्त्र**' कौन सा है?

उक्त प्रश्नों का समाधान निम्नोक्ति से हो जाता है—'**हरिहर-पुत्राय' इति वीजं, 'पुत्र - लाभाय शत्रु-नाशनाय' इति शक्तिः, 'मद-गज-वाहनाय महा-शास्ते नमः' इति कीलकम्।**

'**हरिहर-पुत्र**' की उपासना में सभी मन्त्रों के प्राण जगानेवाले तीन अक्षर ही मुख्य हैं—**(१) आँ, (२)ह्रीँ** और (३) **क्रोँ**। 'आँ' की शक्ति 'ऐँ' हैं, जो '**वाग्भव-वीज**' के रूप में प्रसिद्ध है, उक्त उपासना में यही '**शक्ति**' है। '**ह्रीँ**' वीज की शक्ति भी '**ह्रीँ**' ही है जो '**माया - वीज**' एवं '**शक्ति - वीज**' के रूप में प्रसिद्ध है। अब शेष रहा '**क्रोँ**'। इसकी शक्ति है '**क्लीँ**', जिसे '**काम-वीज**' भी कहते हैं। उक्त उपासना में इसे '**कीलक**' के रूप में लिया जाता है।

उक्त वीजाक्षरों का न्यास

'**आँ ब्रह्मणे नमः**'—दक्षिण कान पर। '**ह्रीँ विष्णवे नमः**'—बाँएँ कान पर। '**क्रोँ रुद्राय नमः**'—हृदय, दोनों हाथों और जङ्घाओं पर। '**स्कन्दाय नमः**'—नाभि पर। '**ह्रीँ हरिहर - पुत्राय नमः**'—पीठ और सभी अङ्गों पर।

मन्त्र की शीघ्र सिद्धि पाने के लिए कीलक मन्त्र के रूप में '**मद-गज-वाहनाय महा-शास्ते नमः स्वाहा**' मन्त्र को जपते रहना आवश्यक है। अन्य मन्त्रों की सिद्धि के लिए पहले 'कर - न्यास' और बाद में 'अङ्ग-न्यास' किया जाता है, किन्तु इस मन्त्र की सिद्धि के लिए पहले 'अङ्ग - न्यास' और बाद में

'कर-न्यास' करना चाहिए। 'अङ्ग-न्यास' में भी 'नेत्र - त्रय' पर न्यास करने के बाद ही 'कवच - न्यास' करना चाहिए। यथा--

अङ्ग-न्यास—ॐ हरिहर-पुत्राय—ज्ञानाय हृदयाय नमः। ॐ पुत्र - लाभाय--ऐश्वर्याय शिरसे स्वाहा। ॐ शत्रु - नाशनाय—शक्त्यै शिखायै वषट्। ॐ मद-गज-वाहनाय--तेजसे नेत्र - त्रयाय वौषट्। ॐ महा - शास्ते- बलाय कवचाय हुँ। ॐ नमः स्वाहा--वीर्याय अस्त्राय फट्। ॐ भूर्भवस्वरोम् दिग्-बन्धः।

कर-न्यास--ॐ हरिहर-पुत्राय—ज्ञानाय अंगुष्ठाभ्यां नमः। ॐ पुत्र - लाभाय—ऐश्वर्याय तर्जनीभ्यां नमः। ॐ शत्रु-नाशनाय—शक्त्यै मध्यमाभ्यां नमः। ॐ मद-गज-वाहनाय—तेजसे अनामिकाभ्यां नमः। ॐ महा-शास्ते—बलाय कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ॐ नमः स्वाहा--वीर्याय करतल - कर पृष्ठाभ्यां नमः। ॐ भूर्भुवस्वरोम दिग्-बन्धः।

टिप्पणी—कृपया उक्त 'अङ्ग-न्यास' एवं 'कर-न्यास' को बार-बार पढ़ें और समझें कि इस मन्त्र के इन न्यासों में अवश्य कुछ विशेषताएँ हैं।

उक्त 'हरिहर-पुत्र मन्त्र' के ऋषि हैं—'श्री रेवन्तः'। छन्द है--'अनुष्टुप्'। देवता है—'हरिहर-पुत्र'। 'ध्यान' निम्न प्रकार किया जाता है—

दृष्ट्वा माया - स्वरूपं शिव - हृदय-हरं भस्म-दैतेय-शत्रुम्,
विष्णुं देवो महेशो मदन-पर-वशः प्राप सम्भोगं त्वस्मात्।
जातं लोकोपकारे हरि - हर - तनयं धन्विनं वाण-हस्तम्,
वन्देऽहं भूत-नाथं सकल-रिपु-हरं सूर्यं - कोटि - प्रकाशम्॥

अष्टोत्तर-शत-नाम स्तोत्रम्

महा-शास्ता महा-देवो, महा-देव-सुतोऽव्ययः। लोक-कर्त्ता लोक-भर्त्ता, लोक-हर्त्ता परात्परः॥१
त्रिलोक-रक्षको धन्वी, तपस्वी भूत-सैनिकः। मन्त्र - वेदो महा - वेदो, मारुतो जगदीश्वरः॥२
लोकाध्यक्षोऽग्रणीः श्रीमान्, अप्रमेय - पराक्रमः। सिंहारूढो गजारूढो, हयारूढो महेश्वरः॥३
नाना-शास्त्र-धरोऽनघो, नाना-विद्या-विशारदः। नाना-रूप-धरो वीरो, नाना-प्राणि-निषेवकः॥४
भूतेशो भूतिदो भृत्यो, भुजङ्गाऽऽभरणोत्तमः। इक्षु-धन्वी पुष्प-बाणो, महा-रूपो महा - प्रभुः॥५
माया-देवी-सुतो मान्यो, महा-नीतो महा-गुणः। महाशैवो महा-रुद्रो, वैष्णवो विष्णु-पूजकः॥६
विघ्नेशो वीर - भद्रेशो, भैरवः षण्मुख - ध्रुवः। मेरु-शृङ्ग-समासीनो, मुनि - सङ्घ-निषेवितः॥७
देवो भद्रो जगन्नाथो, गण-नाथो गणेश्वरः। महा-योगी महा-मायी, महा-भोगी महा-स्थिरः॥८
देव-शास्ता भूत-शास्ता, भीम-हास-पराक्रमः। नाग-हारो नाग-केशो, व्योम-केशः सनातनः॥९
सगुणो निर्गुणो नित्यो, नित्य-तृप्तो निराश्रयः। लोकाश्रयो गणाधीशः, चतुः-षष्ठि-कला-मयः॥१०
ऋग्-यजुः-सामाथर्व-रूपी, मल्लकासुर-भञ्जनः। त्रिमूर्तिर्दैत्य - मथनः, प्रकृतिः पुरुषोत्तमः॥११
काल-ज्ञानी महा-ज्ञानी, कामदः कमलेक्षणः। कल्प वृक्षो महा-वृक्षो, विद्या-वृक्षो विभूतिदः॥१२
संसार-ताप-विच्छेत्ता, पशु-लोक-भयङ्करः। रोग-हन्ता प्राण - दाता, पर - गर्व - विभञ्जनः॥१३
सर्व-शास्त्रार्थ-तत्त्वज्ञो, नीति-मान् पाप-भञ्जनः। पुष्कला-पूर्णा-संयुक्तः, परमात्मा सतां गतिः॥१४
अनन्ताऽऽदित्य-सङ्काशः, सुब्रह्मण्याऽनुजो बलो। भक्तानुकम्पी देवेशो, भगवान् भक्त-वत्सलः॥१५

'हरिहर-पुत्र मन्त्र' की सिद्धि के लिए 'पाटलो-पुत्र' (पटना) का 'पाटन शक्ति-पीठ' सबसे उत्तम स्थान माना जाता है। अथवा गोमती नदी में स्नान कर किसी 'वट' या 'नीम' या अन्य पवित्र वृक्ष के नीचे बैठकर जप करना—विशेष रूप से शरद-ऋतु के नवरात्र के दिनों में—सद्यः फल-प्रद होता है। प्रतिदिन सन्ध्या के समय एक सौ आठ बार उक्त मन्त्र का जप करने से अवश्य सिद्धि मिलती है, परन्तु ध्यान रहे कि उक्त मन्त्र से 'कुण्डलिनी शक्ति' का जागरण होता है। उसका सदुपयोग ही करना चाहिए। जैसा 'अष्टोत्तर-शतनाम-स्तोत्र' में बताया गया है, हरिहर-पुत्र 'पशु-लोक-भयङ्कर' हैं। अतः इस मन्त्र का प्रयोग अत्यन्त सावधानी के साथ ही करना चाहिए।

'भगवद्-गीता' के १६ वें अध्याय में 'दैवी सम्पत्' और 'आसुरी सम्पत्' पर प्रकाश डाला गया है। उस अध्याय का २० वाँ श्लोक प्रसिद्ध है—

त्रिविधं नरकस्येदं, द्वारं नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत् ॥

'हरिहर-पुत्र' के मन्त्र में भी पुत्र-लाभ **'काम'** है, शत्रु-नाश 'क्रोध' है और मद-गज-वाहनाय **'लोभ'** है, परन्तु इन शब्दों के सूक्ष्मार्थ समझने पर साधक दिव्य बन जाता है, अन्यथा वह **'पशु'** ही रहेगा। जय हो **'हरि-हर-पुत्र'** की।

४७ नार्थ कार स्ट्रीट • **आलवार तिरुनगरी (तमिलनाडु)—६२८६१२**

सम्पादक की वाणी

'राष्ट्र-भाषा' हिन्दी के निर्माता **'आचार्य द्विवेदी'**

एवं

'सरस्वती' के यशस्वी सम्पादक तथा **'चण्डी'** के प्रवर्तक **पं० देवीदत्त शुक्ल**

निःस्पृह सम्पादन-परम्परा का प्रताप !

पाँचवें वर्ष (अप्रैल, ९१—मार्च, ९२) में। सारे देश के सत्-साहित्य-प्रेमियों को **'मुफ्त'** भेजी जानेवाली **'एकमात्र'** अनूठी **साहित्यिक/सांस्कृतिक** शोध-परक सचित्र मासिक पत्रिका : **'सम्पादक की वाणी'**।

कृपया वार्षिक रियायती **'डाक-पैकिंग-व्यय'** मात्र **'दस रुपए'** धनादेश से **'श्री रमादत्त शुक्ल'** के नाम भेजें। यदि अप्रैल से सितम्बर, ९१ तक के छः अंकों की सजिल्द पुस्तक (पृष्ठ सं० २५६, मूल्य ६५ रु०) भी उपहार-रूप में लेना चाहें, तो **'सहयोगी'** सहायक का वार्षिक शुल्क ३६ रुपए म० आ० से भेजें। उक्त पुस्तक अक्टूबर, नवम्बर ९१ के अंकों के साथ डाक-व्यय नौ रुपए की वी. पी. द्वारा भेजी जाएगी, जिससे सारा साहित्य सुरक्षित पहुँच जाय।

'चण्डी'-कार्यालय, अलोपीदेवी मार्ग, प्रयाग (उ०प्र०)—२११००६

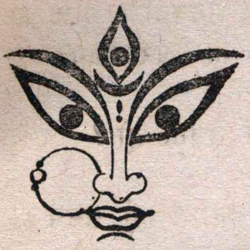

हमारी उपास्य देवता
परा-शक्ति भगवती चण्डिका

'आम्नाय-धुरन्धर' पं० हरिशास्त्री दाधीच

वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण और दर्शन आदि शास्त्र पढ़ने, देखने, सुनने और विचारने से यह निर्णय प्राप्त होता है कि भगवती चण्डिका ही सर्व-प्रथम सृष्टि में पूजी गईं और अब भी पूजी जाती हैं तथा आगे भी पूजी जाएँगी और हम सबकी वही उपास्य देवता हैं। ब्रह्मा, बिष्णु, शिव, इन्द्र, वरुण, कुबेर, यम आदि देवों ने और यक्ष, किन्नर, सिद्ध चारणों ने तथा भूतादि ने भी इन्हीं की आराधना की है। इसमें सन्देह नहीं कि सबमें इन्हीं की सत्ता है। भगवती चण्डिका से पर कोई तत्त्व नहीं है। यदि है, तो यही एक है। यही आत्मा, यही परमात्मा, यही ईश्वर, यही जीव, यही स्थूल, यही सूक्ष्म, यही कारण, यही कार्य, यही इस पार और यही उस पार है। पर-ब्रह्म के व्यावहारिक नाम ही महा - माया, विद्या, प्रकृति, अम्बा, भगवती, शिवा, शक्ति, दुर्गा, चण्डिका हैं।

भगवती चण्डिका के प्रभाव और प्रसाद को ही प्राप्त कर ब्रह्मादि देव पूजित हुए और अपने-अपने कार्य में समर्थ हुए। सृष्टि-क्रम ज्यों-ज्यों बढ़ता चला, विचार और उपाधि-भेद से, दैवी प्रभाव से और-और देवताओं की--विष्णु, शिव, सूर्यादि की उपासना बढ़ती गई। इस क्रम से युगान्तर में बहुत-सी उपासनाएँ बढ़ती रहीं, परन्तु यह कहना सु-प्रमाणित है कि आदि 'कृत (सत्य) युग' में एक 'शक्ति' की ही उपासना थी। फिर 'शिव-शक्ति' दोनों की रही। यह उपासना शक्ति - कृत प्रभाव और अद्वैत - बोध के लिए भगवती ने ही प्रचारित की, ऐसा तत्कालीन आगमों के वाक्य बोधित करते हैं। फिर विष्णु की, तदनन्तर ब्रह्मा की, परन्तु ये सब उपासनाएँ शक्ति-सहित ही थीं--ब्रह्मा-सावित्री, लक्ष्मी - नारायण एवं शङ्कर और गौरी साथ ही पूजे जाते थे, ऐसा बहुत जगह प्रमाण मिलता है।

बढ़ते-बढ़ते नाना देवोपासनाएँ प्रचलित हुईं। वे अब भी चल रही हैं। तत्त्व-दृष्टि से देखें, तो वे सभी उपासनाएँ 'शक्ति' की ही उपासना हैं क्योंकि शास्त्र-कार कहते हैं--**'सर्वे देवाः स - शक्तयः'** अर्थात् सभी देव शक्ति-सहित हैं। ठीक भी है, 'शक्ति' न हो, तो वे देव किसी कार्य के करने में समर्थ नहीं होते। कार्य करना दूर, वे 'शक्ति' के बिना फड़क भी नहीं सकते। भगवान् शङ्कराचार्य 'सौन्दर्य-लहरी' में कहते हैं—शिव (पुरुष) यदि शक्ति से -चेतना से युक्त रहता है, तभी कार्य-क्षम हो सकता है। बिना शक्ति के वह फड़क भी नहीं सकता।

'शक्ति' ही समस्त संसार के व्यवहार का कारण है। यही 'महा-माया', 'विद्या' है। यही जीवों के 'बन्ध' का कारण है, तो यही जीवों के 'मोक्ष' का कारण है। यह बात ठीक भी है। जो बन्धन का कारण होता है, वही मोक्ष का कारण हो सकता है। यह बात 'सप्तशती' के निम्न उपदेश से स्पष्ट हो जाती है—

'सा विद्या परमा मुक्तेर्हेतु-भूता सनातनी। संसार-बन्ध-हेतुश्च सैव सर्वेश्वरेश्वरी ॥'

अर्थात् सुमेधा महर्षि राजा सुरथ को उपदेश दे रहे हैं कि--वह विद्या (भगवती) मुक्ति का परम हेतु, असाधारण कारण है। वह सनातनी है और हे राजन् ! वही सब ईश्वरों की ईश्वरी (जगदम्बा) संसार-बन्धन का भी कारण है।

अब यह बात उपस्थित होती है कि भगवती को ही उपास्य देवता क्यों बताते हो ? विष्णु, शिवादि, राम, कृष्णादि को क्यों नहीं ? तो सुनिए—

संसार की यह रीति है कि जो निग्रहानुग्रह-समर्थ हो, जो कर्तुं अकर्तुं अन्यथा कर्तुं समर्थ हो, वही उपास्य होता है अर्थात् सर्व-समर्थ हो, ऐसा उपास्य देव होना चाहिए। विचार करने से यह सत्य ही प्रतीत होगा कि संसार में जो सर्व-समर्थ होता है, वही सेव्य, ध्येय, आराध्य, मान्य, पूज्य और आश्रयणीय होता है। सर्व-सामर्थ्य की दृष्टि से हम देखते हैं, तो भगवती चण्डिका ही हमारे आगे आती हैं, अन्य देव नहीं। जो 'निग्रह' कर सकता है, वह 'अनुग्रह' भी कर सके; जो बिगाड़ सके, वह बना भी सके, दोनों सामर्थ्यवाला ही मान्य होता है। 'सप्तशती' में यह निर्णय हो जाता है। देखिए—

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा, रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणाम्, त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ।।

अर्थात्— देव-गण स्तुति करते हुए कहते हैं—हे जगदम्ब ! आप सन्तुष्ट हुईं, तो सभी रोगों को दूर कर देती हो, परन्तु रुष्ट होने पर सभी अभीष्ट कामों को भी नष्ट कर देती हो।

बात सच भी है कि जो प्रसन्न होकर किसी को निहाल न कर सके और कुपित होकर किसी का कुछ बिगाड़ न सके, ऐसा स्वामी पुरुष हो या स्त्री, उसे कोई नहीं मानता। प्राचीन शास्त्र-कारों ने ठीक ही कहा है—

'प्रसादो निष्फलो यस्य, कोपोऽपि च निरर्थकः। तं न भर्तारमिच्छन्ति, षण्ढं पतिमिव स्त्रियः ।।'

यही बात भारवि महा-कवि ने 'किरातार्जुनीय' में कही है--

अबन्ध्य-कोपस्य विहन्तुरापदां, भवन्ति वश्याः स्वयमेव देहिनः।
अमर्ष-शून्येन जनस्य जन्तुना, न जात-हार्देन न विद्विषादरः ।।

इसलिए जो कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुं समर्थ हो, वही मान्य, पूज्य तथा आश्रयणीय होता है। यह लक्षण भगवती महा - माया चण्डिका में सतत व्याप्त है। अतः वही हम सबकी उपास्य देवता हो सकती है।

सर्व-सामर्थ्य का उक्त भाव 'सप्त-शती' में अन्यत्र भी दिखाया है। जैसे, शक्रादि देव स्तुति करते हुए कहते हैं--हे जगदम्ब !

'चित्ते कृपा समर-निष्ठुरता च दृष्टा, त्वय्येव देवि वरदे ! भुवन-त्रयेऽपि।'

चित्त में कृपा और संग्राम में निष्ठुरता (कठोरता)—ये दोनों हमने आप ही में देखा। त्रिभुवन में ऐसी कोई देवता नहीं, जिसमें ऐसे दोनों भाव एक कालावच्छेद से रहते हों। वैसे तो **'चण्डी'** नाम ही भगवती चण्डिका के कोप की सफलता बतलाता है। **'चडि-कोपे'** धातु से **'चण्डी'**-शब्द बना है। सफल कोपवाली देवता का नाम **'चण्डी'** है। इसी से वायु आदि देवों को भी भय-दायकता से, इस कोप को पर-ब्रह्मता का लिङ्ग माना है। **'चण्डी'** पद की ऐसी ही व्याख्या करते हुए 'गुप्तवती'-टीकाकार ने लिखा है—

'भीषास्माद् वातः पवते भीषोदेति सूर्यः। भीषात्मादग्निश्चेन्द्रस्य मृत्युर्धावति पञ्चमः ।।'

साथ ही '**चण्ड-भानु, चण्ड-वाद**' इत्यादि पद-प्रयोगों को इयत्तानवच्छिन्न असाधारण गुण-शालिता-परक बतलाया है। इसी कारण भगवती चण्डिका के शस्त्रास्त्रों को भी इन्द्रादि देवों ने प्रणाम किया है और उनसे अपनी रक्षा की प्रार्थना की है—

'शूलेन पाहि नो देवि ! पाहि खड्गेन चाम्बिके ! घण्टा-स्वनेन नः पाहि, चाप-ज्या-निःस्वनेन च ।।'

सप्त-शती के उक्त मन्त्र प्रसिद्ध हैं। ऐसे सफल कोपवाली भगवती चण्डिका ही सर्व-समर्थ है, इसमें सन्देह नहीं। वही हम सबकी उपास्य देवता है।

सामर्थ्य-विशेष को प्रदर्शित करने के लिए यहाँ हम एक पद्य 'भगवद्-गीता' का उद्धृत करते हैं और उसकी तुलना 'सप्तशती-रहस्य' के एक मन्त्र से करते हुए यह बतलाते हैं कि सातिशय सामर्थ्य, जो कहीं किसी देव विशेष में नहीं है, चण्डी में ही है। इस प्रसङ्ग से पाठक को साधना का बल प्राप्त होगा। 'गीता' के छठे अध्याय में अर्जुन ने यह पूछा है कि 'हे भगवन् ! योग करते-करते विचलित होकर यदि साधक लक्ष्य-स्थान पर न पहुँच पाए, तो वह किस दशा को प्राप्त होता है ? उभयथा भ्रष्ट होकर वह छिन्नाभ्र की तरह नष्ट तो नहीं हो जाता ?' उत्तर में भगवान् कहते हैं—

'पार्थ ! नैवेह नामुत्र, विनाशस्तस्य विद्यते । नहि कल्याण-कृत् कश्चिद्, दुर्गति तात ! गच्छति ।।'

अर्थात् 'हे अर्जुन ! उसका यहाँ और वहाँ—दोनों ही जगह विनाश नहीं हो सकता क्योंकि कल्याण कर्म करनेवाला दुर्गति को नहीं पाता।' सारांश यह है कि पुण्य कर्म विकृत नहीं होते और वे कर्त्ता का कोई अनिष्ट नहीं होने देते। लोक में भी यह उक्ति है कि '**पुण्य की जड़ सदा हरी**'। भगवान् ने पुण्य (कल्याण) कर्त्ता पर अपना दबाव नहीं बतलाया है, न और ही किसी का। शुभ-कर्म शुभ-दायक ही होगा, ऐसा कहते हुए श्रीकृष्ण ने यह घोषित किया है कि ईश्वरत्व से भी सुकृत कर्म नष्ट नहीं हो सकता, पुण्य कर्म में भगवान् भी कुछ भी हेर-फेर नहीं कर सकते, यह तात्पर्य हुआ।

अब इधर देखिये, 'सप्तशती' के 'वैकृतिक - रहस्य', मन्त्र ३ में महा-मुनि मार्कण्डेय क्या कहते हैं—

'यो न पूजयते नित्यं, चण्डिकां भक्त-वत्सलाम् । भस्मी-कृत्यास्य पुण्यानि, निर्दहेत् परमेश्वरी ।।'

अर्थात् जो भक्त-वत्सला चण्डिका को नहीं पूजता ('पूजयते' पद में ध्यान-पूजा-स्तोत्रादि सभी समझना चाहिए), उसके पुण्य-कर्मों को वह परमेश्वरी भस्म करके (पुण्य-कर्ता को) यावज्जीवन शोकाग्नि से जलाती रहती है अर्थात् वह शोक से तपता रहता है। पाठक दोनों की उत्कृष्टता पर विचार करते हुए देखें कि जहाँ पुण्य-कर्म पर कोई क्या, विष्णु (कृष्ण) भगवान् भी कुछ नहीं कर सकते, वहाँ वह चण्डिका उन्हीं पुण्य-कर्मों को भी भस्म कर देती है ! यह निग्रहानुग्रह-सामर्थ्य है या नहीं ?

उपासना-विषयक आगम-ग्रन्थों में ऐसे वाक्य कई जगह मिलते हैं कि 'मैं पाप को पुण्य और पुण्य को पाप बना देती हूँ।' यथा—'**पापं पुण्यायते प्रीत्या, पुण्यं पापायते रुषा**' इत्यादि। स्तोत्रों में भी ऐसे वाक्य मिलते हैं। बताइए, इतना सामर्थ्य जिसमें मिले, वह और कौन देवता है ? हमने तो ऐसा अपरिच्छिन्न सामर्थ्य कहीं नहीं देखा। पाठक भी यदि निर्मत्सर होकर देखेंगे, तो उन्हें यह बात सही मालूम पड़ेगी। यही नहीं, श्रीकृष्ण की उपास्य देवता जगदम्बा ही रही है, यह भी निर्णीत-प्राय है। देखिए—'**कृष्णेन संस्तुते देवि ! शश्वद् भक्त्या त्वमम्बिके !**' स्पष्ट ही है। ऐसे ही ब्रह्मा, शिवादि देव भी इसका आराधन करते रहे हैं। जैसे—

'चतुर्भुजे चतुर्वक्त्र-संस्तुते परमेश्वरि, हिमाचल-सुता-नाथ-संस्तुते (पूजिते) परमेश्वरि !
इन्द्राणी-पति-सद्भाव-पूजिते परमेश्वरि, सुरासुर - शिरो-रत्न-निघृष्ट - चरणाम्बुजे ।।'

विशेषतः यह कहने में भी सङ्कोच नहीं होता है कि हरि-हर, विरञ्चि आदि देवाधि-देव भी भगवती के माहात्म्य और प्रभावातिशयादि को परिपूर्ण - तया नहीं कह सके । 'शक्रादि-स्तुति' में स्पष्ट कहा है--

'यस्याः प्रभावमतुलं भगवाननन्तो, ब्रह्मा हरश्च नहि वक्तुमलं बलं च ।'

इस अवसर पर 'महा-भारत' के उस प्रसङ्ग का स्मरण कराना भी उपयोगी होगा कि 'भीष्म-पर्व' के अन्तर्गत 'भगवद्-गीता' पर्व में, अर्जुन को विजय प्राप्त करने के लिए दैवी सहायता पहुँचाने की इच्छा से भगवान् श्रीकृष्ण ने दुर्गा का ही आराधन बताया । वह स्तोत्र 'दुर्गा-स्तोत्र' के नाम से अद्यावधि माना और पढ़ा जाता है । अर्जुन ने कृष्णोपदेश से उसे ग्रहण किया । उससे दुर्गा का ध्यान किया । भगवती प्रसन्न होकर प्रकट हुई । अर्जुन को विजयी होने का वर दिया । यह भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं निजी उपस्थिति में करवाया । वर लेकर कृष्णार्जुन रथ पर चढ़ **'सेनयोरुभयोर्मध्ये'** पहुँचते हैं । बस, वहीं से **'धर्म-क्षेत्रे कुरु-क्षेत्रे'** आदि गीता का प्रारम्भ होता है । यह प्रसङ्ग 'महा-भारत' के 'भीष्म-पर्व' के २२ वें और २३ वें अध्याय में है तथा २४ वें अध्याय से 'भगवद्-गीता' प्रारम्भ होती है ।

यहाँ यह विशेषता विचारणीय है कि योगीश्वर कृष्ण के द्वारा उपदेश पा अर्जुन चण्डिका का आराधन कर, विजय का वर ले, अपने को विजयी मान लेता है । विजयी मान लेने का प्रमाण है— **'लब्ध्वा वरं तु कौन्तेयो, मेने विजयमात्मनः'** ('महा-भारत', भीष्म पर्व, २२ वाँ अध्याय, दुर्गा-स्तोत्र) । इसके कुछ ही क्षण पीछे रथारूढ़ होकर वह **'सेनयोरुभयोर्मध्ये'** जा पहुँचता है । वहाँ अपने बन्धु-बान्धवों को और मामा, चाचा आदि स्व-जनों को सम्मुख देख मोह में आकर यह कह देता है कि—**'न चैतद् विद्मः कतरन्नो गरीयो, यद्वा जयेम यद्वा नो जयेयुः ।'** अर्थात् 'यह समझ में नहीं आता है कि दोनों दलों में कौन बलवान् है । हम उन्हें जीतेंगे कि वे हमें जीतेंगे ।' पूर्व-दुर्गाराधन और वर-प्राप्ति के प्रसङ्ग को देखते हुए ऐसा मोह होना कहाँ तक सम्भव है, विज्ञ पाठक स्वयं विचार करें ।

अर्जुन ऐसा ज्ञानी--नर का अवतार—नारायण का साथी ! फिर भगवती से दिव्य वाणी द्वारा वर प्राप्त हुआ । उसकी विजय सर्वथा निर्णीत हो गई । फिर भी कृष्ण से आकर यह कहना—

'कार्पण्य-दोषोपहत-स्वभावः, पृच्छामि त्वां धर्म - सम्मूढ - चेताः ।
यच्छ्रेयः स्यान्निश्चितं, ब्रूहि तन्मे शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम् ।।'

क्या यह प्रश्न विजय-सिद्धि का वर पा लेने पर भी उपयुक्त है ? हाँ, यदि पूर्व-प्राप्त देवी-उपासना का निर्णय न हो और केवल व्यावहारिक मोह, भगवद्-गीता के प्रारम्भ का प्रसङ्ग ही रखकर समझाना चाहें, तो हो सकता है, कोई साधारण आदमी की बात हो, तो । पर ऐसा नहीं है । उस प्रसङ्ग को छिपा नहीं सकते, न वह छिप ही सकता है क्योंकि अन्यान्य पुराणों से भी तो 'महा - भारत' समन्वय रखता है । 'महा-भारत' में ही अन्य-अन्य स्थल में भी ऐसा हुआ है । 'विराट् पर्व' में युधिष्ठिर - सहित अर्जुनादि ने अज्ञात-वास में भी दुर्गा का आराधन किया है । संक्षेप में लिखते हैं--

युधिष्ठिरादि ने अज्ञात-वास स्वीकार कर प्रस्थान किया । विराट्-नगर की ओर चले । विचार आया कि 'अपने को सब राजा-महाराजा जानते हैं, कैसे छिपेंगे ? क्या होगा ? यदि प्रकट हो गए, तो फिर चौदह वर्ष वनवास भोगना पड़ेगा । बड़ा सङ्कट आया । इस सङ्कट से पार होने को किसकी शरण में जायँ, क्या करें ?' ऐसा विचारते हुए युधिष्ठिर के मन में महा-माया श्रीजगदम्बा दुर्गा देवी का स्मरण

हुआ और उन्होंने भगवती दुर्गा का आराधन किया। उनका स्तोत्र महा-भारत के 'विराट् पर्व' के छठे अध्याय में है। उससे प्रसन्न होकर भगवती ने युधिष्ठिर को विजय का वर दिया और साथ ही यह कहा कि--

मत्-प्रसादाच्च वः सर्वान्, विराट्-नगरे स्थितान्। न प्रज्ञास्यन्ति कुरवो, नरा वा तन्निवासिनः॥

अर्थात् 'हे युधिष्ठिर! मेरी कृपा से विराट्-नगर में रहते हुए तुम सबको कोई भी कौरव और नगर-निवासी नहीं जान सकेंगे।'

कहिए, कैसा मोह किया! उस महा-भारत-काल में क्या पाण्डव वीर छिप सकते थे? वह भी एक पड़ोसी राजा से? राज-तेज तो विभूति रमाए से भी नहीं छिपता। फिर युधिष्ठिर जैसे धर्म - राज और अर्जुन तथा भीम जैसे महा-बली महा-पुरुषों का दुराव तो अति कठिन ही है, परन्तु भगवती का प्रभाव देखिए! राजा विराट् क्या, वहाँ का कोई भी इन्हें पहचान नहीं सका।

भगवती का ऐसा ही प्रभाव है। वह बड़े-बड़े ज्ञानियों को भी बलात् मोह में डाल देती है। विराट् राजा क्या चीज था? देखा आपने! बड़े - बड़े सङ्कटों पर बड़े - बड़े अवतारों ने, राजाओं ने, ऋषियों ने, देवों ने—सबने भगवती का आराधन किया है। इसीलिए हम सबकी उपास्य देवता वही भुवनेश्वरी पराम्बा होनी चाहिए क्योंकि वही निग्रहानुग्रह में समर्थ है।

अद्भुत कार्य जो कभी न हो सकें, उन्हें भी यह कौतुक से कर डालती है। देखिए, वसुदेव जी के दो पत्नियाँ थीं--रोहिणी और देवकी। रोहिणी के कोई सन्तान न थी। देवकी के सन्तान होती थी और मर जाती थी (कंस द्वारा मार दी जाती थी)। एक समय रोहिणी ने भी जगदम्बा दुर्गा का आराधन किया (कहीं पुराणों में गर्गाचार्य से करवाया, ऐसा भी है)। बन्ध्या-योग से दुःखी रोहिणी को भगवती ने वर दिया, 'तुझे पुत्र दूँगी।' प्रतिज्ञानुसार ही भगवती ने देवकी के सातवें गर्भ को पाँचवें महीने में देवकी के गर्भ से खींचकर रोहिणी के गर्भ में स्थापित कर दिया। वही बलराम हुए। यह प्रमाण 'श्रीमद्-भागवत्' में और 'देवी-भागवत' में तथा अन्यान्य पुराणों में भी है। खींचने के कारण ही बलराम जी का नाम '**सङ्कर्षण**' पड़ा। विचार कीजिए, किसी देवता ने या वैज्ञानिक ने पाँच महीने के गर्भ को, सोती हुई गर्भिणी को बिना पीड़ा दिए, जीवित निकाल कर ले जाना, स्थानान्तर में रोहिणी के गर्भाशय में, बिना उसके मालूम किए बालक को प्रविष्ट कर देना, कितने आश्चर्य की बात है! आश्चर्य की ही बात नहीं, सुतरां असम्भव है। फिर भी सर्व-सम्भव किया और वह पूर्ण गर्भ होकर, परिपुष्ट होकर महा-बली महा-नीतिज्ञ सर्व-प्रकार कुशल निकले। क्या कहा जाय! पाँच महीनों का गर्भ (डिम्भ) बाहर से भीतर कैसे प्रविष्ट कर दिया? रोहिणी को मालूम नहीं, वेदना नहीं, दुःख नहीं और वह जीवित कैसे रहा! धन्य है जगदम्बा! कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं समर्थ हो, इसमें सन्देह नहीं। आपकी लीला अपार है!

भगवती में सर्व-सामर्थ्य ऐसी है कि वह जो चाहे, सो कर सकती है। यहाँ एक तर्क और सम्मुख उपस्थित होता है कि भगवती माया है और ज्ञानी माया - चक्र से पार हो जाते हैं। यह अज्ञानियों को फँसाती है, ज्ञानियों को नहीं। इसका उत्तर सरल ही है। प्रथम तो ऊपर के उदाहरण ज्ञानियों के ही दिए हैं। उन्हें समझने से यह तर्क टिक नहीं सकता। भाई साहब! ज्ञानी क्या, ज्ञान के केन्द्र - भूत शिव-विष्णु आदि देव भी जिसकी इच्छा के सहारे नृत्य करते हैं, उसके आगे ज्ञानी मनुष्य क्या कर सकेगा? ज्ञानी तो इसकी शरण आकर, इसके प्रसाद से ही कुछ लाभ पाकर, इसके चक्र से पार हो, तो हो सकता

है।**'शिवादीनपि कर्माणि कारयन्ती यदृच्छया'** अर्थात् यह भगवती तो अपनी इच्छानुसार शिवादि देवों से काम करवाती है, तो ज्ञानी क्या करेंगे ! वे सब इसके विधान में आने पर ही ज्ञानी भी हो सकेंगे।

ज्ञान किसका, कौन करता है, जरा विचार-दृष्टि से देखिए। प्रपञ्च का ही ज्ञान--इसका ही निदान जानना है। ब्रह्म का ज्ञान ब्रह्म को जानने का नहीं है। ब्रह्म-भूत हो जाने का ज्ञान है। वह ज्ञान इसका ज्ञान है। ब्रह्म कोई ज्ञेय वस्तु या तत्त्व नहीं है। भाई, अद्वैत-ज्ञान करना है तुम्हें ? अद्वैत किसका, किससे या किसमें करोगे ? आखिर प्रकृति का पुरुष से, या पुरुष में अथवा माया का ब्रह्म में ? तो यह ज्ञान तो इसी की अपेक्षा रखता है। बिना इसका आश्रय लिए आप अद्वय-ज्ञान पा ही नहीं सकते। इसलिए यह तर्क कुछ प्रतिष्ठा नहीं पा सकता। देखिए, जो ज्ञानी इसके उपासक होते हैं, उन्हें ब्रह्मानुभव यहीं हो जाता है। इसमें शङ्कराचार्य का पद्य प्रमाण है—**'पर-ब्रह्माभिख्यं रसयति रसं त्वद्-भजन-वान्।'** अर्थात् हे देवि ! आपके भजन में निरत हुआ साधक (ज्ञानी) पर - ब्रह्म नाम के रस का आस्वाद करता रहता है। यही अद्वैत-ज्ञान देनेवाली है, यह भी समझिए--

विहायसि व्याप्तिरिवोष्णतानस्ते, भानौ प्रभेवेन्दु-गतेव चन्द्रिका।
मातः ! सदा ब्रह्मणि संललन्ती, त्वमद्वयं बोधयसि स्व - योगिनः॥

अर्थात् आकाश में व्याप्ति और अग्नि में उष्णता तथा सूर्य में प्रभा एवं चन्द्र में चाँदनी की तरह आप ब्रह्म में विलास करती हुई अपने योगी (साधक) को अद्वय-ज्ञान का प्रबोध करा देती हैं। ठीक बात है कि यह भगवती महा - माया ब्रह्म-तेज से सम्वलित अर्थात् उस पर खेलती हुई दीख पड़े, तो अद्वैत है। इन दो में कोरे ब्रह्म का ज्ञान अद्वैत कहलाता है। क्या नहीं ? तो न जाने, उस नहीं - नहीं के कल्पना-जगत् में वेदान्ती कैसा क्या पा सकेंगे ! अस्तु, कोई कुछ भी करे। हमें तो यहीं सर्वानन्द ब्रह्मानन्द प्रतिभात होता है।

ब्रह्म-ज्ञान से भी इसका ज्ञान बहुत सरल और सुगम भी है। यह भी एक विशिष्ट उत्कर्ष ही है कि भगवती सर्व-कामना-प्रद होती हुई मोक्ष, निर्वाण, निःश्रेयस--सब देती है। अन्यत्र ऐसी बात नहीं। जहाँ देखो, जहाँ कुछ भी साधन भगवान् का फलित होने लगा, विरक्त हो गए, स्त्री - पुत्रों का त्याग किया, वे रो रहे हैं ! उपासक उन्हें उपेक्षा से देखता है या नहीं देखता। खाना नहीं खाता। उपवासादि-परायण होना पड़ता है। मतलब यह हुआ कि 'प्रवृत्ति' के सभी पथ छोड़ने पड़ते हैं, तब कहीं 'निवृत्ति' में प्रविष्ट होता है। फिर भी भगवान् की 'गीता'-स्थित प्रतिज्ञा के अनुसार अनेक जन्मों में सिद्धि होते - होते ही परम गति को पाता है। इधर भगवती का सामर्थ्य हम क्या दिखाएँ ! वह एक प्रसिद्ध पद्य ही निर्णय कर देता है—

यत्रास्ति भोगो न च तत्र मोक्षः, यत्रास्ति मोक्षो न च तत्र भोगः।
श्रीसुन्दरी - तर्पण (पूजन) तत्पराणां, भोगश्च मोक्षश्च करस्थ एव॥

जन्म-जन्मान्तर की क्या बात ! एक ही जन्म में और दोनों बातें—भोग भी, मोक्ष भी--सानन्द पाता है। ऐसी सर्वातिशय-सामर्थ्या अपरिच्छिन्न-कारुण्य-शालिनी मुण्ड-मालिनी जगदम्बा को छोड़ और कौन उपास्य हो सकता है ? मैं तो कहता हूँ, मानव मात्र का उपास्य यही एक भगवती है, पर मानव भूल से अन्य-अन्य उपास्य देव के चक्कर में भटकते फिरते हैं। विचार करके वे भगवती के माहात्म्य को पढ़ें-सुनें और मनन करें, तो निःसन्देह कहीं भटकना न पड़े।

भगवती ने कई ज्ञानियों के आचरण बदल दिए और ज्ञानी, जो 'गीता' में भगवान् की आत्मा माना गया है—**'ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्'** अर्थात् वह भगवदात्म - तुल्य ही है, परन्तु 'सप्तशती', प्रथम अध्याय के निम्न मन्त्र को देखो, यह क्या कहता है--

ज्ञानिनामपि चेतांसि, देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय, महा-माया प्रयच्छति ।।

अर्थात् वह भगवती देवी महा-माया ज्ञानियों के भी चित्त को बलात् मोह में डाल देती है।

पाठक समझ गए होंगे। भगवती के सम्मुख ज्ञानी-ध्यानी की एक नहीं चलती। वह चाहे, तो बलात्—हठात् भी उसका ज्ञान-ध्यान बिगाड़ सकती है और बना सकती है। ऐसा निग्रहानुग्रह - सामर्थ्य केवल भगवती में ही है। इसी महा-माया के प्रभाव पर एक बार नारद जी भी मोह में पड़ गए थे। उन्होंने विष्णु भगवान् के सम्मुख कह दिया कि मैंने माया को जीत लिया है। तत्काल भगवान् ने उन्हें फटकारा कि "हे गीतज्ञ ! ऐसा नहीं कहना चाहिए। 'माया' का पार तो हमने भी नहीं पाया है। देखना है तो आ, मैं बताऊँ।" यह कहकर नारद को कन्नौज देश में पहुँचा कर माया की वह लीला दिखाई कि क्या कहें ! फिर तो नारद को कभी 'माया' को जीतने का साहस न हो सका। 'देवी - भागवत' के छठें स्कन्ध में यह कथा विस्तार-पूर्वक वर्णित है।

इससे सिद्ध होता है कि ज्ञानी, ध्यानी, तपस्वी—कोई हो, भगवती की कृपा से ही पार जा सकता है। इससे विमुख हुए लोगों को इस प्रपञ्च से कभी छुटकारा नहीं मिलता--इसमें सन्देह नहीं।

सर्व-समर्थ को किसी के आश्रय की जरूरत नहीं रहती। यह भी एक बात देखने की है और मनन के योग्य है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देव जब-जब दानवों-द्वारा पीड़ित हुए हैं, दुःखी हुए हैं, तब परस्पर आपसी आश्रय करते रहे हैं। कभी तो सभी देव शिव जी के पास जाकर सहायता माँगते हैं, तो कभी विष्णु आदि देव ब्रह्मा के पास जाकर अपना दुःख रोते हैं, तो कभी ब्रह्मादि देव विष्णु के पास जाकर गिड़गिड़ाते हैं। ऐसा वर्णन प्रायः सभी पुराणों में देख पड़ता है और यह भी सुनिश्चित देख पड़ता है कि ये ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर भी और समस्त इन्द्रादि देव भी भगवती के पास कई बार आश्रय पाने के लिए आए है, गिड़गिड़ाए हैं, किन्तु ऐसा स्थल पुराणों में नहीं आया, जहाँ भगवती जगदम्बा भुवनेश्वरी मणि-द्वीपाधिवासिनी (एवं दश - महा-विद्याओं में से एक स्वरूप भी) किसी समय किसी दानवादि से क्षुब्ध होकर सहायता के लिए ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव के पास गई हों, गिड़गिड़ाई हों।

उपनिषदों और पुराणों में भी अनेक स्थल ऐसे हैं, जहाँ ऊपर लिखी बात स्पष्ट है। 'केन उपनिषत्' में इन्द्रादिकों का गर्व दूर करने को भगवती ने यक्ष-रूप धर कर परीक्षण किया। वही यक्ष 'उमा हैमावती' होकर उपदेश करता है। भगवती से इन्द्र ने पूछा कि 'यह यक्ष कौन था ?' तब उसने अपने आपको ब्रह्म बतलाते हुए वही रूप रखा है अर्थात् उसी स्वरूप से अपने आपको ब्रह्म प्रदर्शित किया है। ऐसे ही 'श्वेताश्वतर उपनिषत्' में देखिए। देवता ध्यान करते हैं, भगवती उन्हें दर्शन देती है—**'ध्यान-योगानुगता अपश्यन्, देवात्म-शक्ति स्वगुणैर्निगूढाम्'** तथा **'इन्द्रो मायाभि पुरूरुप ईयते'** अर्थात् इन्द्र माया से ही वह रूप धारण करता है। **'मायां तु प्रकृतिं विद्यात्'** इत्यादि और भी मन्त्र हैं। ये सभी प्रमाण वैदिक हैं।

अब पुराणों में देखिए। कोई पुराण ऐसा नहीं है, जहाँ थोड़ा - बहुत विस्तार से या संक्षेप से भगवती का चरित, कथा या माहात्म्य न मिलता हो। 'मार्कण्डेय पुराण' की सप्तशती तो ज्वलन्त उदा-

हरण है। इससे तो भारत-वासी मात्र परिचित हैं। इसमें ब्रह्मा, विष्णु और शिव को ही देवी के तीनों चरितों का ऋषि अर्थात् ध्यान-कर्ता बतलाया है और जगह-जगह अर्थात् महिषासुर - वध के लिए तथा शुम्भ-निशुम्भ-वध के लिए ब्रह्मा, विष्णु आदि सभी देव-कृत स्तुतियाँ भी स्पष्ट हैं।

'ब्रह्माण्ड-पुराण' में 'ललितोपाख्यान' नाम का एक खण्ड ही भगवती के वर्णन से भरा है। ४० अध्याय हैं। उसमें श्रीत्रिपुरा-ललिता पराम्बा का भण्डासुर से युद्ध है और जगदम्बा का देवों से कृत राज्याभिषेक है।

भागवत (विष्णु-भागवत) में रुक्मिणी-हरण के समय और चीर - हरण के समय गोप-कन्याओं द्वारा चण्डिका-पूजन तथा गौरी-पूजन है।

'ब्रह्म-वैवर्त-पुराण' में 'प्रकृति-खण्ड' के नाम से एक भाग ही दुर्गा-चरित और राधा - वर्णन से रँगा हुआ है।

'पद्म - पुराण' में जहाँ - तहाँ भगवती के व्रतोपवासादि से--कथा - महिमादि से बहुत अध्याय पवित्र हुए हैं।

'शिव-पुराण' में पार्वती-चरित परिपूर्णतया है। सती-चरित भी है। यह विशेषता है कि भगवती का चरित कई प्रकार से आया है।

'गणेश-पुराण' में गणपति-जन्म और गणपति के अग्र - पूज्य होने की कथा में श्रीभगवती का सुन्दर वर्णन है। इसमें २-४ स्थल पर जगदम्बा का सुन्दर चरित आया है।

'देवी - भागवत' तो जगदम्बा के चरितों से ही चमत्कृत है। क्या कहें, भगवती की महिमा धन्य है !

ऐसे ही वराह, वामन, मत्स्यादि पुराणों में जहाँ - तहाँ भगवती के माहात्म्य का वर्णन है, किन्तु किसी भी ग्रन्थ में ऐसा स्थल कहीं नहीं है, जहाँ भगवती ने किसी देव का आश्रय लिया हो। वैसे तो स्त्री-मात्र उसी की विभूतियाँ हैं—

'विद्याः समस्तास्तव देवि ! भेदाः, स्त्रियः समस्ताः सकला जगत्सु।'

इस मन्त्र के अनुसार इसकी विभूतियाँ राधा, सीता, पार्वती, रमा आदि-- सभी अपने - अपने पुरुष-देवों के पास ही हैं, परन्तु दुर्गा-रूप से या दश-महा-विद्या-रूप से कोई आद्या, तारा, भुवनेश्वरी, षोडशी, बगला, छिन्नमस्ता, भैरवी, मातङ्गी, धूमावती, कमलात्मिका इन दशों में से कोई भी कहीं पुकारने गई हो, तो बताइए। कहते हैं, ऐसा स्थल हमें नहीं मिला। मिले कहाँ से ? है हो नहीं। इसको कहते हैं—'सर्व-समर्थ देवता'। इस प्रसङ्ग को पाठक आक्षेप न समझें। हमने तो इसे इसलिए दिया है कि शक्ति के उपासक भाइयों को हम यह सुझा दें कि आप सुदृढ़ और शुद्ध सनातन मार्ग पर चल रहे हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। सीधा लक्ष्य-प्राप्ति का यही साधन है। जगदम्बा ही भोग-मोक्ष दोनों देती है। यही हम सबकी उपास्या है।

यदि यह कहा जाय कि 'माया' और 'ब्रह्म' दोनों जगत् के कारण हैं--चाहे 'प्रकृति-पुरुष' या 'शक्ति' और 'शिव' कुछ भी कह लीजिए, परम पिता और जगन्माता दो हैं, फिर एक 'माता' का ही आश्रय क्यों बताया जाता है ?

इसका उत्तर बहुत सरल-तया समझाया जा सकता है कि 'कारण' दोनों हैं, तो भी एक 'प्रधान' ओर एक 'सहकारी' है। उनमें 'प्रधान' कारण माता ही है। पुत्र को माँ के पेट से बाहर आते ही माँ का परिचय होता है। वह उसका दूध-भरा स्तन चूसने लगता है और उसकी गोद में रात-दिन पलता है, तो धीरे-धीरे उसे ही पूर्ण पहचानता है और वही उसका पालन-पोषण करती है। पिता को यह क्या पहचाने ? पिता क्या है, कौन है, यह उसको कुछ ख्याल नहीं; न वह इसके लिए रुचि ही रखता है। पिता की उसे आवश्यकता ही नहीं पड़ती ! और पिता का ज्ञान भी उसे कराती है, तो 'माता' ही कराती है। जगत् में कहावत भी प्रसिद्ध है—**'माँ बतावे वही बाप। शिशु न जाने अपने आप।'** इस व्यवहार को परम प्रमाण मानकर समझिए कि 'माता' क्या और कैसा 'कारण' है।

पिता स्वयं भी उसे अपने आपको 'कारण' नहीं समझा सकता, न कह सकता है। वह तो यह कहता है, देखिए भगवद्-गीता—

'नाहं प्रकाशः सर्वस्य, योग-माया-समावृतः।

अर्थात् भगवान् कृष्ण स्वयं कहते हैं कि 'भाई अर्जुन, मैं सबका स्वयं-प्रकाश भी नहीं हो सकता। मैं तो योग-माया से समावृत रहता हूँ' अर्थात् 'माया-सम्वलित होने के कारण मैं परं-ब्रह्म-तत्त्व या सबके प्रकाश में नहीं आ सकता।' इस प्रमाण को देखते हुए विचार कीजिए—प्रथमोपास्या देवता भगवती सिद्ध होती है कि नहीं ? यदि हाँ, तो क्यों ये लोग अज्ञान-वश बिना माँ का उपदेश पाए पिता की तलाश में भटक रहे हैं ? हमें तो इन लोगों पर बहुत दया आती है कि इनके प्रति विशेष प्रयत्न करें, जिससे इनका दिन सीधा हो और ये सब जगन्माता चण्डिका की सेवा में निरत रहकर ब्रह्म-ज्ञान-प्राप्ति में सुविधा पाएँ, पर क्या करें ? ये लोग भी कुछ विचार-दृष्टि से काम लें और पक्षपात को छोड़ें, तो कुछ करना सम्भव है।

अन्यथा, शङ्कराचार्य की यही सूक्ति सिद्ध समझनी पड़ती है—

अतस्त्वामाराध्यां हरि-हर-विरिञ्च्यादिभिरपि, प्रणन्तुं स्तोतुं वा कथमकृत-पुण्यः प्रभवति।

अर्थात् हे जगदम्ब ! ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि देवों की भी आराधनीया आपको पुण्यवान् जन ही प्रणाम और स्तुति करने को समर्थ होते हैं। अन्य नहीं। पुण्यात्मा ही इधर झुकता है, बाकी नहीं।

ये अज्ञानी कहते हैं कि माता जगत् का मुख्य कारण है, तो पिता (पुरुष) कौन सा कारण रहा ? इसके उत्तर में 'ब्रह्म-सूत्र' (वेदान्त - सिद्ध ग्रन्थ) में भगवान् शङ्कराचार्य ने ब्रह्म को जगत् का अभिन्न निमित्तोपादान कारण माना है। साक्षात् कारण नहीं माना है और पञ्चमी श्रुति के द्वारा ब्रह्म का प्रकृतित्व-साधन भी किया है, जिसका मतलब यह होता है कि प्रकृति को इस प्रकरण में ब्रह्म बताया है अन्यथा **'यतो न इमानि भूतानि जायन्ते'**—इस श्रुति में पञ्चमी विभक्ति के अर्थ में आए हुए 'तस्' प्रत्यय का समन्वय ठीक नहीं बैठता। विशेष क्या कहें, वेदान्त-ग्रन्थों में ही क्या, सभी पुराणों में ऐसा ही समन्वय किया है कि माया और ब्रह्म का अद्वैत समझा जाय।

जगत् का कारण बताते हुए वेदान्त-ग्रन्थ तो यही कहते हैं कि **'शक्ति प्रकृति माया'** ही प्रपञ्च की सृष्टि करती है। इस महा-माया की एक शक्ति-विशेष है, जिसके दो भेद हैं—१ आवरण-शक्ति और २ विक्षेप - शक्ति। इन दोनों में पहली 'विक्षेप - शक्ति' ही जगत् की रचना करती है। लिखा है— **'विक्षेप-शक्तिर्भूतादि-ब्रह्माण्डान्तं जगत् सृजेत्'** अर्थात् विक्षेप-शक्ति ही भूतादि ब्रह्माण्ड-पर्यन्त जगत् बनाती है। इससे पाठक समझ गए होंगे कि शक्ति ही जगत् का कारण है और यही उपास्या है। हम यदि जगत्

को जानना चाहते हैं और इससे पार होना चाहते हैं, तो इस जगत् को कर्त्री-धर्त्री का अनुनय-विनय कर इसके प्रसाद से ही जगत् का रहस्य और कठिनाइयाँ सुगमता से समझ सकते हैं।

किसी इञ्जन की मशीन के पुर्जों की क्रिया सीखना-समझना है, तो उसके बनानेवाले इञ्जीनियर से मिलिए। वह प्रसन्न होकर जो सिखाएगा, वैसा ज्ञान किसी दूसरे से नहीं पा सकते। ठीक इसी प्रकार इस 'माया' के चक्र को अर्थात् प्रपञ्च को समझना है, तो इसकी बनानेवाली और सञ्चालन करनेवाली 'प्रकृति' शक्ति महा-माया जगदम्बा को प्रसन्न करना होगा। इसका आराधन किसी भी प्रकार करना प्रथम कर्त्तव्य है। इस तरह जगत् के मानव मात्र का ध्येय (उपास्य) भगवती ही होनी चाहिए।

भगवती ही जगत् का कारण है। यही नहीं, यह ईश्वर और जीव का भी कारण है। देखिए, 'तत्त्व-विमर्शिनी'-कार क्या कहते हैं। वेदान्त के इस प्रमाण को खूब समझिए--**'मायाख्यायाः कामधेनोर्वत्सौ जीवेश्वरावुभौ'** अर्थात् 'माया' नाम की काम-धेनु के दो बछड़े हैं--जीव और ईश्वर। अब आपको ईश्वर और जीव का कारण भगवती हो दीखने लगी कि नहीं ?

अब हम आपको यह भी समझाते हैं कि भगवती चण्डिका जगत के कारणों का भी कारण है, किन्तु इसका कोई कारण नहीं है। देखिए, सांख्य-दर्शन, जो आद्य दर्शन कहलाता है, क्या कहता है—**'प्रकृतेर्महान् ततोऽहङ्कारस्तस्माद् गणश्च षोडशकः'** अर्थात् मूल-प्रकृति से महत्-तत्त्व हुआ, महत्-तत्त्व से अहङ्कार, अहङ्कार से सोलह गण हुए हैं। मन सहित ११ इन्द्रियाँ और पञ्च-महा-भूत--ये सोलह गण हैं। इस क्रम से मालूम हो जाना चाहिए कि इन सोलह और 'महत्' तथा 'अहङ्कार' से जगत् बनता है। इनकी कारण मूल प्रकृति महा-माया ही है, तो समस्या हल हो गई कि नहीं ?

ऊपर कहे हुए दार्शनिक विकास-वाद को आगम ग्रन्थों (सप्तशती-रहस्य) में निम्न प्रकार प्रतिपादित किया है--**'सर्वस्याद्या महा-लक्ष्मीस्त्रिगुणा, परमेश्वरी लक्ष्याऽलक्ष्य-स्वरूपा सा।'** इससे भी वही शक्ति सबकी आद्या है, उपास्या है, ऐसा स्पष्ट हो जाता है।

यही 'माया शक्ति' परमात्मा है। परमात्मा कोई भिन्न रूप नहीं है। इस 'महा-माया' की एक झलक किसी अचिन्त्य उपाधि से 'पुरुष'-संज्ञा को प्राप्त होती है। चेतना इसकी झलक है, द्युति है, प्रभा है। कुछ भी कहिए, वही पुरुष में प्रधान होती है—**'त्वं चेतनाऽसि पुरुषे, पवने बलं त्वम्'** इत्यादि। **'पुरि शेते इति पुरुषः'**--'पुरि' अर्थात् 'पुर' के समान सीमा में (एक वृत्त में) सोनेवाला--व्याप्त रहनेवाला 'पुरुष' कहलाता है। इसकी प्रभा परिधिवाली होकर जिस चैतन्यांश को घेरे रहती है, वही 'पुरुष' होता है। जब तक इस तरह का अद्वैत-ज्ञान न होगा, तब तक मुक्त नहीं हो सकते। यदि ब्रह्म को इससे भिन्न माना और इस महा-माया भगवती को ब्रह्म से भिन्न माना, तो कुछ नहीं मिलेगा। चक्र में पड़े अरहट की घड़ियों की तरह घूमा करोगे, इसमें सन्देह नहीं।

अब यदि यह कहो कि ब्रह्म पहले और पीछे माया हुई, फिर भले ही एक हो गए हैं, तो यह भी एक भारी भूल है। मैं कहता हूँ, आप लोग इस पहले-पीछे के चक्र में भी न पड़िए। यह पहले-पीछे का चक्र बहुत बुरा है। इसे छूने से यह उसी तरह दूषित कर देता है, जैसे कीचड़ में फँसे को निकालनेवाला कीचड़ में सन ही जाता है। इसके वश हुआ साधक ऊपर-नीचे, आगे-पीछे, आदि-अन्त और बड़े-छोटेपन के भ्रम में ज्ञान-ध्यान भूलकर न इधर का रहता है, न उधर का। इसलिए शास्त्र पर विश्वास

कीजिए। आगम-निगम जिस बात को समझाते हैं, उसी पर स्थिर श्रद्धा रखिए। इनका अद्वैत इस प्रकार मानिए, जैसा भगवान् वेदव्यास जी ने समझाया है—

'एवं युवतयः सद्यः पुरुषत्वं प्रपेदिरे। चक्षुष्मन्तोऽनुपश्यन्ति नेतरेऽत्तद्विदो जनाः ॥'

इस प्रकार स्त्रियाँ ही पुरुषत्व को प्राप्त हुई हैं, पर भाई, इस बात को आँखवाले ही जानते हैं (देखते हैं)। उसको न समझनेवाले नहीं जानते। यहाँ चक्षु से चर्म-चक्षु का ग्रहण नहीं है, ज्ञान-चक्षु का ही ग्रहण है। इस बात को ज्ञानी ही जान सकता है कि स्त्रियाँ ही पुरुष बनती हैं। अज्ञानी इस तथ्य को नहीं पहचानते। यहाँ **'एवं'** शब्द ऊपर बताए हुए प्रकार का बोधक है। 'प्राधानिक रहस्य' में पहले **'सर्वस्याद्या महा-लक्ष्मी'** से आरम्भ करते हुए मन्त्र २४ तक महा-काली, महा-लक्ष्मी, महा-सरस्वती और उनसे एक-एक मिथुनों को बताया है। उनमें ब्रह्मा, विष्णु, शिव देवों को स्त्रियों से ही (शक्ति-रूपों से ही) प्रकट किया है। आगे ब्रह्माण्ड की रचना इनके द्वारा बताई है।

इस क्रम से भी महा-माया महा-लक्ष्मी जगत् का मूल कारण निर्णीत होती है और माया - ब्रह्म का या प्रकृति-पुरुष का पहले-पीछे का शास्त्रार्थ निवृत्त हो जाता है।

अब तो पाठकों की समझ में यह आ गया होगा कि 'माया' - शब्द से वाच्य प्रकृति, शक्ति, चण्डिका देवी में और 'ब्रह्म'-पद से वाच्य पुरुष, परमात्मा, परमेश्वर में कुछ भी अन्तर नहीं है। देखिए, भगवती जगदम्बा **'देवी गीता'** में हिमालय को क्या तत्त्वोपदेश करती हैं? ध्यान से पढ़िए और खूब समझिए—'देवी-भागवत', स्क० ७, अ० ३१, देवी-गीता, अ० २—

अहमेवास पूर्व तु, नान्यत् किञ्चिन्नगाधिप ! तदात्म-रूपं चित्-सम्वित्, पर-ब्रह्मैक-नामकम् ॥१
अप्रतर्क्यमनिर्देश्यमनौपम्यमनामयम्। तस्य काचित् स्वतः सिद्धा, शक्तिः मायेति विश्रुता ॥२
न सती सा नाऽसती सा, नोभयात्मा विरोधतः। एतद्-विलक्षणा काचिद्, वस्तु-भूताऽस्ति सर्वदा ॥३
पावकस्योष्णतेवेयमुष्णांशोरिव दीधितिः। चन्द्रस्य चन्द्रिके वेयं, ममेयं सहजा ध्रुवा ॥४
तस्यां कर्माणि जीवानां, जीवाः कालाश्च सञ्चरे। अभेदेन विलीनाः स्युः, सुषुप्तौ व्यवहार-वत् ॥५

अन्त में एक बात और कहकर पाठकों से क्षमा चाहेंगे। यह 'चण्डी' महा-माया—'माया - सबल ब्रह्म' कहलाती है। इसकी सत्ता में ब्रह्मा, विष्णु, शिव 'माया-सबल-ब्रह्म' के प्रतीक हैं और इनके अवतार राम, कृष्ण, नृसिंह, वराहादि भी 'माया-शबल' ब्रह्म ही कहलाते हैं। वे अंश हैं, पूर्वोक्त ब्रह्मादि-देव प्रतीक हैं, यह भेद समझिए। इस बात को विशेषतया ध्यान में रखकर विचार करोगे, तो देव - मात्र में क्या, प्राणी - मात्र में आपको भगवती जगदम्बा चण्डिका के दृश्य दीखने लगेंगे। ज्यों - ज्यों यह भाव व्यापक होता जायगा, वैसी ही उपासना प्रबल होती जायगी और अद्वैत - दर्शन प्राप्त होगा—भेद मिट जायगा। इसलिए इसकी उपासना को स्वीकृत कीजिए, किसी योग्य साधक से परामर्श कर दीक्षा ग्रहण कीजिए। फिर जो आनन्द आपको प्राप्त होगा, वह अवर्णनीय होगा। खुद मस्ती प्रकट होगी। संसार दुस्तर नहीं दीख पड़ेगा। सब कठिनाइयाँ सुगम होंगी।

श्रीचण्डी–चालीसा

'कवि-पुष्कर शास्त्री' श्री पं० जगन्नारायण देव शर्मा

श्रीगुरु के पद-पद्म का, करके संयत ध्यान। चण्डी के गुण-कथन में, दें मुझको वर-दान ।।

जय-जय-जय श्री चण्डी माता ! कर प्रणाम, तेरे गुण गाता ।।
जय-जय-जय, श्री चण्डी देवी ! कौन नहीं है तेरा सेवी ।।१
जय चण्डी मेरी तू अम्बा ! तू ही कहलाती जगदम्बा ।
जय चण्डी, जो तुझको ध्याता, मुँह माँगा वर है वह पाता ।।२
जय-जय सदा प्रशंसित चण्डी । महामोद-महिमा से मण्डित ।
जय-जय कर दुष्टों को दण्डित, कर दे उनके गुरुडम खण्डित ।।३
जय-जय चारों युग निस्तारिणि ! शिष्ट जनों की कृति-विस्तारिणि !
जय-जय, विविध रूप-त्रय धारिणि–महा-महिम्ना, मङ्गल-कारिणि ।।४
जय-जय, सदाचार-आराध्या, सब प्रकार सेवक - संराध्या ।
जय-जय, बाधाओं की हरणी ! सब प्रकार तू जग-दुख - हरणी ।।
जयति, धराधर की तू कन्या—सभी भाँति धरती पर धन्या ।
जयति, निराश्रित तेरी माया–भाव-भूषिता तेरी काया ।।६
तेरी बड़ी अनोखी रेखा–नहीं किसी ने आँखों देखा !
तेरी महिमा अद्‌भुत न्यारी– तू सबकी जननी है प्यारी ।।७
युगानु-रूप रूप तू धरती—सभी भाँति, सबको वश करती ।
सभी देवियों की महरानी, सभी जगह तेरी रजधानी ।।८
काली-रूप धार जब लेती, तब अरि को भय से भर देती ।
अट्टहास कर रण में जाती, निर्भय होती तेरी छाती ।।९
लक्ष्मी-रूप धार जब लेती, सर्व-सम्पदा है भर देती ।
सरस्वती - वपु जब दरसाती, तब विद्या दे सुख सरसाती ।।१०
सृष्टि-स्थिति-त्रय करनेवाली, हो स्वाधीन विचरनेवाली ।
अपनी महिमा तू ही जाने, नहीं किसी को भारी माने ।।११
जय श्रीविन्ध्याचली भवानी, त्रिपुर-सुन्दरी सुधी सयानी ।
जय श्री सत्य-तत्त्व की दात्री, आशातीत प्रेम की पात्री ।।१२

जय-जय, आदि-शक्ति विख्याता, निगमागम-वर्णित विज्ञाता।
जय-जय, तू गुण-गौरव-खानी, तेरे यश गा थकती बानी ।।१३
तू ही उमा-रमा-ब्रह्माणी, काव्य-कोश - संयुत कल्याणी।
तू तपेश्वरी--तप की सरणी, सब प्रकार संशय-भय-हरणी ।।१४
सकल सुरासुर तेरे सेवी, तू सबकी आराध्या देवी।
दीन - आर्त जन को अपनाती—दया-दृष्टि उन पै दरसाती ।।१५
सभी ठौर तेरी प्रभुताई—सभी ठौर, तेरी चतुराई !
तू सबकी ही करे भलाई—तुझे न भाती कभी बुराई ।।१८
तुही कहाती भरणी - भद्रा—तुही चलाती निद्रा - तन्द्रा।
कहाँ नहीं तेरी है सत्ता—कहाँ नहीं तेरी जय-मत्ता ।।१७
तू सदैव है विचरण - शीला—तू सदैव ही विवरण-लीला ।।
स्वाहा-स्वधा सभी में रमती—सभी कहीं दृढ़ता से जमती ।।१८
सूर्य-देव में तुही प्रभा है—चन्द्र-देव में तुही विभा है।
तुही अयोध्या--तू ही काशी, सभी कहीं तेरी प्रतिमासी ।।१९
करे सिंह पर तू असवारी, जो कि भयङ्कर होता भारी।
त्रि-विध अग्नि की ज्वाला है तू—औ त्रिवर्ग की शास्ता है तू ।।२०
मद्य-पान जब तू करती है, नहीं काल से तू डरती है।
युद्ध-स्थल में शौर्य दिखाती—सर्वोपरि है नाम लिखाती ।।२१
चौंसठ योगिनियाँ हैं तेरी—करतीं नहीं तनिक भी देरी।
रक्त शत्रुओं का हैं पीती, अति प्रचण्ड होकर हैं जीती ।।२२
उड़ती तेरी विजय-पताका, अङ्कित हो जय-युक्त शलाका।
दानव-दल हैं मारे जाते--जो कि प्रहार सामने आते ।।२३
तूने की है पूर्व प्रतिज्ञा--कोई कैसे करे अवज्ञा !
दुष्ट-नाश-हित तू अवतरती—क्लेश-हीन सज्जन को करती ।।२४
दिव्य देव - गण तुझे मनाते—अपने सङ्कट-विकट बताते।
दानव-दल पर क्रोध दिखाती—उन्हें हताहत - वृत्ति सिखाती ।।२५
तेरे आराधक जो अति दृढ़ होते—अपना समय नहीं हैं खोते।
करती तू उन सबकी रक्षा—देती उन्हें साधना - शिक्षा ।।२६

जब सोलह सिङ्गार सजाती--सुर-रमणी भी निरख लजाती ।
तेरे पद पर माथ लगाती--औ अपना सौभाग्य बढ़ाती ।। २७
तेरे अगणित हीरे-मोती, नहीं चमकते लख तन-जोती ।
तुही एक छविवाली होती, सब पर पड़ी धूल को धोती ।।२८
तू अभयङ्कर को अति प्यारी ! तू प्रलयङ्कर की अति प्यारी ।
तू शिव-शङ्कर की अति प्यारी, तू जय-शङ्कर की अति प्यारी ।।२९
तू है समुदित तेज - तपस्या, तू है एकी जटिल समस्या ।
तू है कारण अमित रहस्या, तू रहती है सदा अनश्या ।।३०
चार-आठ-सोलह कर-धारिणि, शत-सहस्त्र-अगणित-भुज-सारिणि ।
अस्त्र-शस्त्र सबमें परि-पारिणि, अवसर पा समस्त अधिकारिणि ।। ३१
तुझमें व्यापक बुद्धि अनूठी, तुझमें शाश्वत शुद्धि अनूठी ।
तुझमें आठो सिद्धि अनूठी, तुझमें नव निधि ऋद्धि अनूठी ।।३२
जो करते हैं मानस-पूजा, उनको काज नहीं फिर दूजा ।
उनके भीतर बढ़ती ऊर्जा, दब जाती अभ्यासित भूर्जा ।।३३
फूल सुगन्धित तुझको भाते, लोग हार गुँथ कर पहनाते ।
तू प्रसन्न-मन हो मुसकाती, और कृपा उन पर दरसाती ।।३४
तू ममता की मूर्ति अकेली, तू समता की स्फूर्ति अकेली ।
तू क्षमता की शक्ति अकेली, तू गुरुता की भक्ति अकेली ।।३५
काम-धेनु होकर वर देती, कल्प-लता हो घर भर देती ।
भुक्ति-मुक्ति देती तू अम्बा, सभी पूजकों की अवलम्बा ।।३६
मधु-कैटभ उपजे बल-शाली, जिनने सारी भू मथ डाली ।
तूने उन्हे युक्ति रच मारा, बेचारों का चला न चारा ।।३७
महिषासुर से सुर-गण हारे, सङ्कट तूने ही तब टारे ।
मदोन्मत्त हो जब ललकारा, तुमने उसे दौड़कर मारा ।।३८
शुम्भ-निशुम्भ रहे दो भाई, जिनसे सब जनता घबराई ।
उनका बध कर आगे आई, तू शान्ति पुनः पनपाई ।।३९
श्रीचण्डी - चालीसा न्यारा, पढ़े-सुने पातक - हर प्यारा ।
'कवि-पुष्कर' द्वारा निरमाया, माँ रखती जिस पर है छाया ।।४०

नियम-सहित नित जो करें इसका सुन्दर पाठ।
आशु-तोष भगवान दें, कहीं सिद्धियाँ आठ।।

['पं० देवीदत्त शुक्ल शताब्दी समारोह' वाराणसी में तीन वर्ष पूर्व सितम्बर, १९८७ में मनाया गया। उस समारोह में काशी के अनेक साहित्यकारों को सम्मानित किया गया, जिनमें सबसे वयोवृद्ध—द्विवेदी-युग के ९६ वर्षीय आशु कवि परम पूज्य श्री पुष्कर-शास्त्री जी थे। आपने उस सम्मान से कृपालु होकर 'चण्डी' के लिए अप्रैल, १९८९ में अभूतपूर्व साहित्य रचने की कृपा की। 'चण्डी' के 'शक्ति-पीठ--काशी' विशेषाङ्क में काशी के २५ महा-पुरुषों की जो पुण्य चरितावली पृष्ठ ४३ पर प्रकाशित है, उसे आप ही जैसे मनीषी लिख सकते थे। उन्हीं दिनों आपने प्रस्तुत 'चालीसा' और 'अष्टक' भी १४ अप्रैल को लिख कर भेजने की अनुपम कृपा की थी। उनके 'यशः-शरीर' को कोटिशः नमन !--सं०]

श्रीचण्डी - अष्टक

श्री चण्डी के चरित जहाँ हैं प्रिय जन गाते, वहाँ नहीं यम-दूत, कष्ट देने हित जाते।
महिमा-मण्डित मूर्ति, मोहिनी है यह अम्बा, गरिमा-मण्डित स्फूर्ति, सोहिनी है जगदम्बा।।
जो होते दृढ़ भक्त, उन्हीं को है अपनाती उनसे उत्तम कार्य, प्रेरणा दे करवाती।
उसके पथ के पथिक, सँभल कर हैं पग धरते, और नहीं वे विघ्न देख, किञ्चित हैं डरते।।
देवी करती सदा प्यार से, दुख से रक्षा, करती निर्भय उन्हें, अलौकिक देकर शिक्षा।
वे भावुक भी नहीं कष्ट, औरों को देते, विजयी बनकर धन्यवाद, सबसे हैं लेते।।
दोनों ही नवरात्रि, अर्चना माँ की होती। कलश-स्थापन-सहित, जलाई जाती जोती।
सप्तशती का पाठ करें, नियमित सुख-दायी, जो होते हैं, शक्ति-साधना के अनुयायी।।
धूप-दीप-नैवेद्य, सुगन्धित माल्य चढ़ाते। जपते उसका मन्त्र, तन्त्र सम्मोद बढ़ाते।
सिंह-वाहिनी जब प्रसन्न, हो जाय भवानी, तब सहाय नित करे, सर्वदा सिद्ध सयानी।।
वेद-पुराण प्रसिद्ध, इष्ट हो जाती देवी। और बनाती दया-दृष्टि से निज पद-सेवी।
फिर आपत्ति-विपत्ति, एक क्षण में हर लेती, सारी सिद्धि-समृद्धि, दान दे घर भर देती।।
पञ्च-मुखी रुद्राक्ष, कण्ठ में अपने धारे, दुष्ट दस्यु को, अस्त्र-शस्त्र के द्वारा मारे।
चमत्कार लख, नमस्कार सब जन करते हैं, वे पाते सुख-शान्ति, मोद मन में भरते हैं।।
कोविद कवि इसलिए, उसी का आश्रय पाके, करते रचना रुचिर, बनें जनता में बाँके।
शरणागत हो, धर्म-नीति उससे पा लेता, 'कवि-पुष्कर' प्रिय सदा, पद्म-पद उसके सेता।।

'चण्डी - चालीसा' पढ़ें, पहले हिय हरषाय।
फिर 'चण्डी - अष्टक' पढ़ें, प्रेम - पूर्ण सरसाय।।

मेरे गुरुदेव

'कुलावधूत' स्वामी चन्द्रनाथ योगेश्वर

श्री अशोककुमार श्रीवास्तव, आजमगढ़ (उ०प्र०)

मेरा परिवार बहुत समय से शाक्त-मतावलम्बी रहा है। इसके विषय में कुछ संक्षिप्त निवेदन मैंने **'काली-मठ की गौरव-मयी परम्परा'** नामक लेख में किया था, जो **'चण्डी'** के **'शक्ति-पीठ-काशी' विशेषाङ्क'** में सितम्बर, ८८—अङ्क ६ में प्रकाशित है। महा-मना, तपस्वी एवं यशस्वी साहित्यकार पं० देवीदत्त शुक्ल जी की 'जन्म-शती समारोह' के उपलक्ष्य में काशी में एक शाक्त-गोष्ठी का आयोजन ८-९ सितम्बर, ८८ को हुआ था और उसी सन्दर्भ में उक्त विशेषाङ्क छपा था। उसके कुछ समय पश्चात् ही 'कुल-भूषण' पूज्य श्री रमादत्त शुक्ल जी का कृपा-पत्र प्राप्त हुआ, जिसमें उन्होंने कुछ और विवरण देने हेतु अनुरोध किया था। विज्ञान का विद्यार्थी होने के नाते हिन्दी-लेखन में प्रवृत्ति तो कभी रही नहीं, तथापि उनकी आज्ञा-पालन में कुछ वृत्तान्त देने का प्रयास कर रहा हूँ।

मेरे प्रपितामह श्री रामफललाल जी के पिता पूज्य श्री दरियाव सिंह जी **'काली-मठ काशी'** के स्वामी ब्रह्मानन्द जी के शिष्य थे। **'काली-मठ'** काशी का एक अत्यन्त पुनीत, गुप्त एवं परम सिद्ध स्थान है। जन-श्रुति ही नहीं, अपितु ऐतिहासिक तथ्य है कि इस स्थान के संस्थापक को स्वयं विश्वेश्वर भगवान् शिव ने दीक्षित किया था। यहाँ स्थापित प्रतिमा स्वयं के पैरों से, मुदित मन से, खिलखिलाती हुई, गङ्गा-तट से इस स्थान के महन्त के पीछे-पीछे चल कर, उनकी कुटी में आकर स्थापित हुई और उसी स्थान पर कालान्तर में 'लक्ष्मी-कुण्ड' के किनारे **'काली-मठ'** की स्थापना हुई। एक से बढ़ कर एक दिव्य, सिद्ध, तपो-निष्ठ साधकों ने इस स्थान को सुशोभित किया, जिनकी लीलाओं और कृपा-कटाक्षों से अभिभूत अनेकानेक लोग अभी भी प्रायः मिल जाते हैं और वहाँ की चर्चा करके भाव - विभोर हो उठते हैं।

अन्तिम महन्त स्वामी अक्षोभ्यानन्द जी सत्तर के दशक में थे। वे एक अत्यन्त सिद्ध और ज्ञानी महात्मा थे और अपने समय के प्रकट और गुप्त 'कौल' साधकों में अत्यन्त प्रतिष्ठित थे। काल-चक्र के वशीभूत पिछले लगभग ३५-३६ वर्षों से मठाधीश-पद के लिए विवाद के चलते स्वामी जी ने भैरव-कुण्ड, पो० विन्ध्याचल, जि० मीरजापुर में रहना प्रारम्भ कर दिया था। तथापि अन्तिम समय में वे **'काली-मठ'** की गद्दी पर बैठे थे। उस समय मेरी अवस्था लगभग बीस वर्ष की रही होगी।

मेरे पिता बाबू बैजनाथप्रसाद जी स्वामी वासुदेवानन्द जी के शिष्य थे और एक उच्च कोटि के गुप्त साधक थे। **'मठ'** में बिवाद के दिनों में मेरे एक चाचा वहीं **'काली-मठ'** में रहा करते थे। वे शिवप्रसाद गुप्त अस्पताल, वाराणसी में कार्य करते थे और **'काली-मठ'** में ही रहा करते थे। **'मठ'** में श्री राम-लक्ष्मण-जानकी की सङ्गमरमर की मूर्त्तियाँ उन्होंने ही स्थापित की थीं। वे स्वामी प्रकाशानन्द जी के शिष्य थे एवं आद्या माँ काली के परम उपासक थे। बचपन में, लगभग १९६१-६२ में, मैं वहाँ प्रायः जाया करता था। यद्यपि विवाद के चलते मठ की दुरवस्था प्रारम्भ हो गई थी, तथापि पूजन-आरती का कार्य यथा-वत् चल रहा था। मैं बाल्यावस्था में उसमें सोत्साह भाग लिया करता था।

विवाह के कुछ वर्षों के पश्चात् मेरी रुझान स्वतः अध्यात्म के प्रति होती गई और कुछ समय के बाद मुझे गुरु की आवश्यकता अनुभव होने लगी। **'मठ'** से परम्परा समाप्त हो चली थी और मैं सद्-गुरु की प्राप्ति हेतु प्रायः खिन्न रहा करता था। यद्यपि बचपन में ज्ञान-दान मुझे एक अत्यन्त विरक्त ज्ञानी एवं तपो-निष्ठ महात्मा रमापति जी से, जिन्हें मेरे परिवार के लोग आदर से 'रामघाट के बाबा' कहते थे, मिल चुका था, तथापि अब **'कुल-धर्म'** से सम्पन्न कौल-मार्गी गुरु की इच्छा होने लगी। **'स्व-धर्मे निधनं श्रेयः'** का विचार, **'काली-मठ'** की गौरव-शाली परम्परा, पिछली कई पीढ़ियों का वहाँ से सम्बन्ध और वर्त्तमान दुरवस्था--मुझे लगने लगा कि मेरा जीवन व्यर्थ ही नष्ट हो जायगा ! प्रायः मैं करुणा-पूरित नेत्रों से माँ की ओर निहारता था और मन-ही-मन व्याकुल होता था।

इसी बीच मेरे एक भाई श्री विजयकुमार (जिनके पिता बाबू केदारनाथ **'काली-मठ'** में कुछ वर्षों रहे थे) उक्त शाक्त-धर्म में गहन रुचि रखते थे और अत्यन्त अन्वेषण-शील प्रकृति के थे। उनसे वर्णन सुनकर मुझे लगा कि मेरी गुरु-परम्परा मुझे प्राप्त हो गई। श्री विजयकुमार भाई की भेंट संयोग-वश प्रख्यात शाक्त-पत्रिका 'चण्डी' के मानद सम्पादक पूज्य श्री रमादत्त शुक्ल जी से हो गई और उन्होंने ही उन्हें स्वामी जी के सम्बन्ध में बताया था। कुछ समयान्तर पर मैंने भी प्रयाग में आकर स्वामी जी के दशन किए। मेरे उक्त भाई उनसे पहले ही मिल चुके थे और स्वामी जी के **'काली-मठ की गुरु-परम्परा'** से सम्बन्धित होने के विषय में मुझे पहले ही बता चुके थे। उनका प्रथम दर्शन और वार्त्तालाप ही अनिर्वचनीय रहा। बिना मेरे द्वारा सन्दभ बताए, मुझे लगा, जैसे वे मुझे अच्छी तरह से जानते हों ! ऐसे निश्छल और स्नेह-सिक्त उनके व्यवहार से मैं अभिभूत हो गया। लगा कि जैसे मेरे तप्त मन एवं प्राणों को उन्होंने सिञ्चित कर दिया हो ! गुरु की कृपा का अनुभव तो 'गूँगे का गुड़' होता है, जिसके रसास्वादन का आनन्द वर्णनातीत होता है। उसका अनुभव तो अन्तरतम को ही आह्लादित कर देता है। वाणी द्वारा वर्णन से वह परे है।

स्वामी जी के प्रथम दशन में ही मुझे उनके अन्तर्यामी और सर्वज्ञत्व का भास होने लगा था, तथापि विश्वास दृढ़ नहीं जमता था। भविष्य की गूढ़ और रहस्य-पूर्ण बातें, वे यों ही सरलता और सहज रूप में कह देते थे। बनावट और आडम्बर से रहित, मानों भूत, वर्तमान एवं भविष्य—सभी कुछ उनसे अनावृत्त हो। न कोई लाग-लपेट और न कोई दिखावा ! सब कुछ सरलता एवं सहजता से यों वर्णित करते जाते कि मन, प्राण और हृदय सभी कुछ उनकी स्नेह-मयी रस-धारा में भाव-विभोर हो जाता।

स्वामी जी की साधना, जहाँ तक मुझे समझ में आई, 'नाथ-सम्प्रदाय', 'अघोर-पन्थ' और 'कौल-मत'—सभी में बहुत ही गहराई तक व्याप्त थी और उनमें इन तीनों का ही अद्भुत समन्वय था। समय-समय पर इन सभी के गूढ़-से-गूढ़ रहस्य के विषय में अपना मत वे इतनी स्पष्टता और सूक्ष्मता से व्यक्त करते थे कि उस सबको स्मरण कर मन आज भी आश्चर्य-चकित हो उठता है। 'चण्डी' के प्रवर्तक 'कौल-कल्पतरु' पं० देवीदत्त शुक्ल के निर्देशन में उनके द्वारा, 'श्यामा-पूजा-पद्धति' तथा अन्य अनेक प्रकाशित एवं अप्रकाशित कौल-ग्रन्थों के प्रकाशन में, सन् १९४२ से ही वर्षों तक अपूर्व सहयोग प्रदान किया गया, जिसकी कथा निराली है।

गुरु के विषय में शिष्य द्वारा कुछ लिखना सूर्य को दीपक दिखाने के ही समान है, तथापि अपने मन के भावों को शब्द-बद्ध करने का यह प्रयास मात्र है।

(शेष पृष्ठ २६ के नीचे)

राजस्थान के मौलिक दार्शनिक मनीषी श्रोत्रिय जी

❀ 'कुल-भूषण' पं० रमादत्त शुक्ल

आगम और निगम तथा जैन एवं बौद्ध-दर्शन के अध्येता एवं मौलिक चिन्तक तथा व्याख्याता वयोवृद्ध श्री पण्डित शिवशङ्कर जी श्रोत्रिय कदाचित् भारत के बर्तमान समय के अकेले 'अध्यात्म-शिरोमणि' के रूप में विद्यमान हैं किन्तु कदाचित् ही देश के गुण-ग्राहक संस्थानों एवं केन्द्रीय या प्रान्तीय शासन के सूत्रधारों को उनके सम्बन्ध में कुछ भी पता होगा ! सामान्य अध्यात्म-जिज्ञासुओं का तो कहना ही क्या !! भारत के प्राचीन ऋषियों के समान पूज्य श्री श्रोत्रिय जी चुपचाप एकान्त में 'राजस्थान' के 'भीलवाड़ा' जनपद के 'माण्डल' ग्राम में अपने 'श्रोत्रिय कृषि - फार्म' में अपनी शोधात्मक साधना में तल्लीन हैं।

आध्यात्मिक जगत् का यह दुर्भाग्य ही है कि उनकी कृतियों का उसे कुछ भी ज्ञान नहीं है क्योंकि उनका प्रकाशन भीलवाड़ा से प्रकाशित मासिक पत्रिका **'महर मन्दाकिनी'** में होता है, जिसका प्रचार अति सीमित है। यह अनूठी पत्रिका विगत चार वर्षों से निरन्तर प्रकाशित हो रही है। वार्षिक शुल्क है मात्र ३० रुपए और एक प्रति का ३ रुपए। पता है—'शिव-सदन', काशीपुरी, भीलवाड़ा (राजस्थान)—३११००१। पत्रिका के सम्पादक हैं डा० हरीश, सह-सम्पादक : श्री मदनमोहन जोशी, प्रबन्ध-सम्पादक डा० ओमप्रकाश शर्मा।

परम पूज्य श्रोत्रिय जी निःस्पृह भाव से गद्य एवं पद्य में भारत के रहस्य-मय दर्शन की गूढ़ गुत्थियों का रहस्योद्‌घाटन वर्षों से करते आ रहे हैं। उनके विशद कृतित्व का परिचय इस छोटे से आलेख में देना सम्भव नहीं है, किन्तु अक्टूबर, ९१ की **'महर-मन्दाकिनी'** में प्रकाशित उनके **'श्रीमद्-भगवद्-गीता पर एक विवेचन' : 'तान्त्रिक परिप्रेक्ष्य में'** शीर्षक **'उपोद्‌घात'** की संक्षिप्त चर्चा करना यहाँ आवश्यक है। उससे सुधी पाठक उनके अभूत-पूर्व शोधात्मक कृतित्व का कुछ अनुमान कर सकेंगे।

'गीता' अनादि-काल से महा-पुरुषों एवं महात्माओं तथा सामान्य जनता की 'कण्ठ-हार' रही है। आदि शङ्कराचार्य तक ने उसका भाष्य किया है और लोकमान्य तिलक जैसे दिग्गजों ने उस पर विस्तार से लिखा है, किन्तु पूज्यवर श्रोत्रिय जी ने कदाचित् पहली बार 'तान्त्रिक' दृष्टि से उसका विवेचन किया है। उक्त **'उपोद्‌घात'** के अन्तिम आलेख में उन्होंने बौद्ध साहित्य (तथागत तत्त्व-संग्रह,

---

(पृष्ठ २५ का शेषांश)

शिव-रूप गुरुदेव के प्रसाद से ही सर्वार्थ - सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं, अन्यथा नहीं, चाहे स्वयं भगवती ही क्यों न इच्छुक हों। गुरु के माध्यम से ही, उनकी कृपा पर ही, प्रभु की कृपा मिलती है। शिष्य की सर्वतोभावेन रक्षा एवं उसे सन्मार्ग पर प्रेरित करके चलाना गुरु से ही सम्भव है। अन्त में गोस्वामी तुलसीदास के शब्दों में—

वन्दे बोध-मयं नित्यं, गुरुं शङ्कर-रूपिणम्। यमाश्रितो हि वक्रोऽपि, चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते ।।

गुरु की कृपा से शिष्य के अवगुण भी पूजनीय हो जाते हैं, जैसे चन्द्रमा के वक्र होने पर भी भगवान् शङ्कर का आश्रय लेने से वह सर्वत्र पूजनीय होता है।

श्री गुरु के चरणों में सादर नमन !

गुह्य-समाज तन्त्र), शाक्त साहित्य (तन्त्र-राज तन्त्र, महा-निर्वाण तन्त्र, योगिनी तन्त्र, सात्वत तन्त्र शक्ति-सङ्गम तन्त्र, रुद्रयामल तन्त्र, निर्वाण तन्त्र, श्री श्रीविद्यार्णव तन्त्र, योगिनी-हृदय, त्रिपुरोपनिषद्, भावनोपनिषद्, काम-कला-विलास, महा-काल-संहिता, ललिता तन्त्र, देवी-भागवत, भगवती गीता), शैव दर्शन (नेत्र तन्त्र या महा-मृत्युञ्जय या अमृतेश भट्टारक एवं ज्ञानार्णव तन्त्र तथा तन्त्रालोक), वैष्णव साहित्य (महा-भागवत पुराण) और वैदिक साहित्य (छान्दोग्योपनिषद्, छान्दसि उपनिषद्, अष्टावक्र गीता) के जिन ग्रन्थों के उद्धरण भावार्थ सहित देकर 'गीता' में निहित तान्त्रिक सिद्धान्तों को स्पष्ट किया है, उनमें से कितनों ही के नाम तक अच्छे-अच्छे विद्वानों ने सुने भी न होंगे। इसी से परमोदार श्रोत्रिय जी ने उक्त ग्रन्थों में से प्रत्येक का संक्षिप्त परिचय भी देने की कृपा की है कि वे कब, कहाँ से, किनके द्वारा प्रकाशित हुए हैं। ध्यान रहे कि यह 'आलेख' श्रोत्रिय जी के 'गीता तन्त्र' नामक वृहद् तन्त्र-परक व्याख्या-ग्रन्थ के 'उपोद्घात' के अन्तिम अंश के आधार पर लिखा गया है। इससे पाठक अनुमान कर सकते हैं कि 'ऋषि-कल्प' पूज्य श्रोत्रिय जी ने भारत के आध्यात्मिक साहित्य का कितना भगीरथ मन्थन करके अपने उक्त मौलिक व्याख्या-ग्रन्थ की रचना की होगी।

अन्त में 'गीता' के लोक-प्रिय 'साधना-सूत्र' की व्याख्या देकर यह 'आलेख' रूपी 'पुष्पाञ्जलि' पूज्य श्रोत्रिय जी के चरणों में अर्पित है। उक्त 'सूत्र' है—

या निशा सर्व-भूतानां, तस्यां जागर्ति संयमी। यस्यां जाग्रति भूतानि, सा निशा पश्यतो मुनेः ॥(२/६९)

तान्त्रिक व्याख्याकार श्रोत्रिय जी लिखते हैं—"**इस श्लोक में 'रात्रि'-शब्द को 'बेखबरी' का प्रतीक माना गया है और 'दिन' को 'सावधानी' का। 'बेखबरी' का अभिप्राय है—संसार में देह-सम्बन्धी क्रिया-कलापों, आवश्यकताओं और अपेक्षाओं के प्रति रुचि-हीन होना और 'सावधानी' का अभिप्राय है अपने जीव-भाव को सदैव स्वात्म-भाव में लीन रखने में सजग रहना।**

उक्त श्लोक में जहाँ 'स्वात्मा' में सदैव 'सजग' रहनेवालों को 'मुनि' कहा है, वहीं 'स्वात्मा' के विषय में 'बेखबर' और देहादि के 'क्रिया-कलापों' में 'सजग' रहनेवालों को 'भूत' अर्थात् नाश-वान् अवस्था के 'व्यक्ति' होना बतलाया है।

श्लोक का सीधा-सादा अर्थ यह है कि जिस 'देह-भाव' में संसार के सभी प्राणियों का चित्त आसक्त होकर सतत रूप से गमन-शील रहता है, 'स्वात्म-योगी' का मन उसमें नहीं रमता। वह तो सदैव दैहिक क्रिया-कलापों के प्रति अनासक्त हुआ उनके प्रति सर्वदा 'बेखबर' होकर, निर्विकार-अवस्था में निज रूप में ही लीन रहता है।

इसके विपरीत 'देहासक्त व्यक्ति' अपने 'जीव-भाव' को 'आत्म-भाव' में निमग्न रखने के विषय में सावधान नहीं हो पाते। वे तो केवल सांसारिक विषय-वासनाओं की पूर्ति के क्रिया-कलापों में ही 'सजगता' के साथ गति-शील रहते हैं।

उक्त श्लोक में वर्णित 'मुनि' दिन के समान 'आत्मा' के 'प्रकाश' (ज्ञान) में 'अमरत्व' का स्वाद लेते हैं, तो 'भूत' लोग रात्रि के 'अन्धकार' के समान अज्ञान के तमस् में जन्म-मृत्यु के घूर्णन में सदैव गति-शील रहते हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि 'गीता' के उक्त प्रसिद्ध श्लोक की ऐसी अपूर्व व्याख्या कदाचित् ही किसी ने लिखी होगी। क्या ही अच्छा होता कि इस व्याख्या में 'रात्रि' के सन्दर्भ में 'सप्तशती' के प्रसिद्ध **'रात्रि-सूक्त'** का और **'काल-रात्रि, मोह-रात्रि, शिव-रात्रि'** आदि रात्रियों का सङ्केत करते हुए पण्डित-प्रवर श्रोत्रिय जी ने **'शाक्त-साधना'** के अन्तर्गत 'रात्रि-काल' में ही की जानेवाली **'महा-पूजा'** (चक्रार्चन, निशार्चन या रहस्य-पूजा) की भी चर्चा की होती। ● ●

मातृ-चरण से लाभ

पण्डित श्री ललन पाण्डेय

माता सबकी रक्षा करती है। मातृ-शक्ति वह शक्ति है, जिससे जो चाहिए, सब मिलता है। जिसने इन मातृ-चरणों की शरण में अपने मन, वचन और कर्मों को लगाया, उसने क्या नहीं पाया! परन्तु हमारे अज्ञान ने हमें न तो उन चरणों को छूने और समझने का अवसर दिया है और न आगे देगा—यदि यही दशा रही तो, क्योंकि मानव-मन आज इतना चञ्चल व विषयासक्त हो गया है कि उसे मातृ-चरण क्या, अपने चरणों के विषय में भी जानकारी नहीं रह गई है कि मेरे चरण उचित पथ पर जा रहे हैं या अनुचित राह पर!

ऐसी अवस्था में दिग्-भ्रम होना-पथ-भ्रष्ट होना स्वाभाविक है। कोई भी मनुष्य अपनी राह भूल सकता है और दुःख दरिद्रता के दावानल में झुलस सकता है। इसमें सन्देह ही क्या है? जब-जब भारत ने वास्तविक आद्या-शक्ति की पहचान नहीं की, वह दुःखी रहा। यही दशा भगवान् बुद्ध के सामने भी आई थी, जब लोग वास्तविक शक्ति की जानकारी न रहने के कारण दुःख भोग रहे थे। भगवान् बुद्ध ने उनके दुःखों को देखकर कहा था कि 'जिस मकान में सदा आग लगी हुई है, उस घर में हँसी और आनन्द कैसे रह सकता है?'

तात्पर्य यह है कि उस युग के लोगों ने न तो अपनी शक्ति पहचानी थी और न अपने में वह शक्ति ही रखी थी। जिस महा-शक्ति से शक्ति प्राप्त होती है, उसकी भी उन्हें जानकारी नहीं थी, तो उनका दुःख भोगना अनिवार्य था। ऐसी ही अवस्था लोगों की जगद्-गुरु शङ्कराचार्य ने जब देखी, तो पुकार कर कहा कि—'हे भाई! तुम्हारी स्त्री कौन है? तुम्हारा पुत्र कौन है? यह संसार बहुत विचित्र है! इसकी चिन्ता छोड़ो। तुम कौन हो और कहाँ से आए हो? इस रहस्य की जानकारी प्राप्त करने की चिन्ता करो।'

शङ्कराचार्य का अभिप्राय यही था कि स्थावर या जङ्गम—सकल संसार माता से ही उत्पन्न होता है, माता से ही रक्षा पाता है। वह उस मातृ-चरण की खोज करे, प्राप्त करे। सुख-पूर्वक अपनी माता की गोद में जिस प्रकार एक बालक निर्भय होकर आनन्द की छलाँग मारता है, संसार के लोग भी मातृ-चरण की छाया में अनिर्वचनीय आनन्द का उपभोग करें। इसी अनुभूति के आधार पर जगद्-गुरु शङ्कराचार्य ने 'आनन्द-लहरी' के ८६ वें श्लोक में लिखा है कि—'हे चण्डि! तुम्हारे ये दोनों चरण स्वर्ग में निवास करनेवाले देवों और देवियों के हाथों को हँसते हैं कि देखिए—उस चण्डी देवी के हम वे दोनों चरण हैं, जिसने अपने स्वस्थ हाथों से अनेकानेक दरिद्रों को कल्याण और लक्ष्मी का दिन-रात दान किया हैं। इसलिए हे चण्डि! तुम्हारे उन चरणों को नमस्कार है।'

इसी प्रकार महर्षि वेदव्यास ने 'मार्कण्डेय पुराण' के १६ वें अध्याय में अनुसूया-वरदान में कहा है कि—महा-देवी अनुसूया देवताओं से कहती हैं—'ब्रह्मा आदि देवता यदि मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझे वर देने योग्य समझते हैं, तो आज से ब्रह्मा, विष्णु और महेश मेरे पुत्र बनना स्वीकार करें। मैं आज से संसार के प्राणियों के क्लेश को दूर करनेवाली बनूँ और मुझमें वह दैवी शक्ति आ जाय।' अनुसूया के

इस प्रकार कहने पर ब्रह्मा, विष्णु और शिव आदि बोले कि—'एवमस्तु' अर्थात् 'ऐसा ही हो, जैसा आप कहती हैं। हम सभी देवता आज से आपको माता के रूप में स्वीकार कर लेते हैं।'

अभिप्राय यह है कि देवता भी **'शक्ति'** के आगे झुकते ही नहीं, उसे स्वीकार करते हैं और **'शक्ति'** की पूजा करते हैं। उसी प्रकार जब कभी और जिस किसी को भी **'शक्ति'** की पहचान हुई है, वह उसकी शरण में जाकर सुखी हुआ है। 'माता' का भजन, मनन और चिन्तन करनेवाला सभी सांसारिक सुखों को प्राप्त करता है, अतुल शक्ति और जगज्जयिनी प्रतिभा प्राप्त करता है तथा जीवन में ही पर-ब्रह्म की अनुभूति भी प्राप्त करता है, इसमें सन्देह नहीं। इसी आशय को जगद्-गुरु शङ्कराचार्य ने भी 'आनन्द-लहरी' के ९९ और १०० वें पद्य में स्पष्ट करते हुए कहा है कि—'हे महा-माये! वेद-शास्त्र को जाननेवाले तुमको वाणी की देवी बताते हैं। कमल पर निवास करनेवाली, विष्णु की पत्नी—लक्ष्मी भी तुमको कहा जाता है। कुछ लोग हिमालय की बेटी तथा शिव की सहचरी भी तुमको कहते हैं। तुम्हारी महिमा इतनी असीम है कि चौथी तुम क्या हो माँ? समझ में नहीं आता। अपनी बुद्धि के अनुसार यही कह सकता हूँ कि हे पर-ब्रह्म की पटरानी! तुम्हीं चौथी वह शक्ति हो, जो सकल विश्व को घुमा रही है, नचा रही है।

'हे माँ! तुम्हारा भजन करनेवाला मनुष्य सरस्वती और लक्ष्मी, जो ब्रह्मा और विष्णु की पत्नियाँ हैं, इन दोनों सौतों के बीच में पुत्र के समान आनन्द करता है, अपने सुन्दर शरीर से कामदेव की पत्नी को भी मोहित कर देता है, भगवान् शङ्कर की तरह चिर-जीवी बनकर पर-ब्रह्म नामवाले रस (आनन्द) का स्वाद लेता है। तुम्हारा भजन करनेवाला इस ऊँचाई पर पहुँच जाता है। इसलिए हे माँ! तुम्हें नमस्कार है।'

माता की शरण में रहनेवाला, उनके चरणों की धूलि का एक कण भी धारण करनेवाला जीव धन्य हो जाता है। उस पर आपत्ति या विपत्ति जो भी कभी आती है, माता स्वयं उसको छिन्न-भिन्न करने के लिए तैयार हो जाती है। महा-प्रतापी त्रिपुर के दहन के समय भगवान् शङ्कर तथा अन्य देवताओं के साथ माता भगवती ने भी प्रस्थान किया—इसलिए कि वह मातृ-सेवक देवताओं के दुःख-दर्द को सहन नहीं कर सकती थी। मातृ-भक्तों के कष्ट को दूर करने के लिए वह अपना सामरिक विकराल रूप धारण कर लेती है। वही रूप त्रिपुर-दहन के समय धारण कर भक्तों के कल्याण के लिए रण-भूमि की ओर प्रस्थान करती है—जिसका वर्णन 'लिङ्ग-पुराण' में निम्न प्रकार किया गया है—

'भगवती दुर्गा ने दैत्यों को विनष्ट करने के लिए जब रण-भूमि की ओर प्रस्थान किया, उस समय सिंह पर चढ़ी हुई, कठोर मार्ग पर जानेवाली, त्रिशूल-धारिणी उन माता ने अन्य आयुधों को भी अपने शेष हाथों में धारण कर लिया था। यथा—अंकुश, शूल, पाश, कुल्हाड़ी, चक्र, तलवार और शंकु। मध्याह्न के सूर्य के समान जाज्वल्यमान, सहस्रों अग्निदेव के समान नेत्रों द्वारा मार्ग को जलाती हुई और साक्षात् वीरता की प्रतिमा वह युवती माता भगवती त्रिपुर-दहन के लिए चली।'

दुःख में, दरिद्रता में, सन्तोष में, विलाप में, शोक में, मोह में, विपत्ति में, पीड़ा में—आज भी लोगों के मुख से **'माता'** शब्द निकल ही जाता है। इसका क्या कारण है? क्या मुख को अन्य कोई शब्द नहीं मिलते? क्या कोई दुःखी मनुष्य को उस समय यह सिखाता है कि और कुछ न कहकर **'माता'** शब्द को ही कहो, उसी से तुम्हारी पीड़ा दूर होगी? नहीं-नहीं।

बात यह है कि जीव-मात्र के हृदय में मातृ-रक्त है, रोम-रोम में मातृ-रक्त का सञ्चार है। इसीलिए जीव-धारी जब कभी सङ्कट में जा पड़ता है, तो वह **'माता'** की याद करता है क्योंकि उसकी अन्तरात्मा जानती है कि शरीर की नस-नस, रोम-रोम को जीवनी-शक्ति **'माता'** से ही मिली है। जब तक **'माता'** की कृपा नहीं होगी, जीव-धारी को कभी भी सुख-सुविधा नहीं मिल सकती। **'माता'** के बिना शान्ति पाना जीव-धारी के लिए इस जगत् में ही नहीं, किसी भी लोक में असम्भव है।

'मातृ-शक्ति' की दो धाराएँ चलती हैं—एक स्नेह की धारा, जिसे करुणा की धारा भी कह सकते हैं। दूसरी धारा लालन-पालन की है, जिसे रक्षा की धारा कहते हैं। इन्हीं दो धाराओं का सङ्गम ही 'माता का शरीर' है। ऐसा कोई सांसारिक जीव नहीं मिलेगा, जो इन दोनों धाराओं से उपकृत नहीं हुआ है। उदर से बाहर होते ही धरती माता जीव की सारी दुर्गन्ध को सहती हुई विस्तृत **धरती-अञ्चल** बिछाकर पहले से ही बैठी रहती है। मल-मूत्र को चाहे वह धरती के जिस अङ्ग पर गिरा दे, **'माता'** चूँ तक नहीं करती। जन्म देनेवाली **'माता'** आँख में आँसू और स्तन में दूध लेकर कब तैयार नहीं रहती है! तात्पर्य यह कि **'माता'** पुत्र के लिए सदा तैयार ही खड़ी दिखाई देती है।

पुत्र भले ही 'मातृ-शक्ति' की आराधना-उपासना न करे, किन्तु 'माता' पुत्र की रक्षा क्षण-क्षण में करती है। वह पुत्र धन्य है, उसका जीवन सफल है, जिसने **'माता'** के प्रति अपनी सेवा अर्पित की है। जिस पुत्र ने 'मातृ-चरणों' की सेवा-शुश्रूषा की, वह इसी जीवन में सब कुछ पा जाता है। 'मातृ-शक्ति' की तुलना करने में देवता लोग भी असमर्थ रहे हैं क्योंकि इस जगत् में ऐसी कोई वस्तु उन्हें नहीं मिली, जिसमें 'स्नेह' और 'पालन' करने की दोनों शक्तियाँ विद्यमान हों। इसीलिए मातृ-शक्ति की तुलना किसी वस्तु से न करके सीधे यही कह दिया देवताओं ने कि—

'हे देवि! तुम्हीं वैष्णवी शक्ति हो, अनन्त शक्ति को धारण करनेवाली हो, विश्व का बीज तुम्हीं हो और परमा माया भी हो। हे देवि! सारे संसार को तुमने ही मोहित कर रखा है और तुम्हारे प्रसन्न हो जाने पर संसार से जीव को मुक्ति (छुटकारा) मिल जाती है। सारांश यह कि मातृ-शक्ति की तुलना के लिए जगत् में कोई वस्तु नहीं है।'

हो भी कैसे? जगत् में किसी एक वस्तु में मातृ - शक्ति की तरह कोई दूसरी शक्ति आज तक न मिली है, न मिलेगी। इसीलिए राष्ट्र- कवि श्री मैथिलीशरण गुप्त ने माता का चित्रण करते हुए कहा है—

अबला तेरी अकथ कहानी। अञ्चल में है दूध और आँखों में पानी!

ये दोनों गुण **'दया'** और **'पालन'**—'माता' में ही हैं। इसलिए 'मातृ-चरणों' का सेवक कोई भी जीव-धारी अपने को जीवन भर अर्पित कर देने पर भी 'माता' के ऋण से उऋण नहीं हो सकता। हाँ, केवल क्षमा-प्रार्थी होकर 'मातृ-चरणों' के आनन्द में अपने को भूल भर सकता है क्योंकि 'मातृ-चरण' कल्प-वृक्ष से भी अधिक उदार और आनन्द के अथाह सागर हैं। इसलिए मात्र अभिवादन के अतिरिक्त उसके प्रति अपने कुछ उद्‌गार प्रकट करना समुद्र में एक अञ्जलि जल बाहर से फेंकने के समान है। अतः मातृ-चरणों में केवल बारम्बार नमस्कार ही निवेदित हैं।

गुप्तावतार बाबा श्री के प्रवचनों के आधार पर

स्त्री और पुरुष

❀ परम पूज्य स्वामी दिव्यानन्द जी सरस्वती

प्रकृति के मूल में व्यक्ति-भेद जैसा कुछ भी नहीं है। जीवन न स्त्री है, न पुरुष। भेद तो प्रकृति की स्थल जनन-क्रिया में दिखाई पड़ता है। द्वित्व न हो, तो उत्पत्ति का भाव नहीं जन्मेगा। तत्त्व-विज्ञानियों ने सिद्ध किया है कि मात्र एक प्रकार की गति कुछ नहीं कर सकती। बिजली का प्रकाश 'पॉजिटिव' ओर 'नेगेटिव' इन दो गतियों के बिना नहीं होती। उसी प्रकार 'विद्या' और 'अविद्या' के ही संयोग से सृष्टि होती है।

शक्ति = विद्या और चित् = जीवन = अविद्या--यही दोनों सृष्टि के कारण हैं। अविद्या में से 'पुं'-सृष्टि की और विद्या में से 'स्त्री'-सृष्टि की भावना उत्पन्न होती है। इन दोनों के संयोग से तीसरी चीज पैदा होती है। चिदङ्ग 'पुं' है और शक्ति 'स्त्री' है। पुरुष में जीवन-शक्ति (पुंसत्व) बढ़ने से क्रिया-भाव बढ़ता है। स्त्री में जीवन-शक्ति (पुंसत्व) बढ़ने से वीराङ्गना हो जाती है। पुरुष को शक्ति (स्त्रीत्व) दबाए, तो नपुंसक बन जाय। स्त्री में शक्ति (स्त्रीत्व) बढ़ने से पुरुष का भोजन बन जाय। निर्बल शक्ति में जीवन का क्षय होता है। प्रबल शक्ति में जीवन बढ़ता है। अजेय पुरुष को मात्र स्त्री ही जीत सकती है—इसका यही कारण है।

व्यवहार में सृष्टि-वर्धन एक नियम है। जिनका क्षय अधिक होता है, उनकी उत्पत्ति भी अधिक होती है, उदाहरण के लिए 'छाग पशु' (बकरों) को देखिए। नित्य कटने पर भी कम नहीं होते! प्रवृत्ति की यह विशेषता है कि वह किसी भी वस्तु को निर्मूल नहीं होने देना चाहती। जीव (पुरुष) के चित्-तत्त्व में उत्पादक क्रिया अधिक है, तो शक्ति (स्त्री) में रजात्मक क्रिया। सृष्टि - वर्धन के लिए उत्पादक के अधीन जब तक दूसरी क्रिया न हो, तब तक उत्पत्ति की सम्भावना नहीं होती। 'स्त्री' में पोषण-शक्ति है और 'पुं' में जनन-शक्ति। दोनों के संयोग में दोनों का ही कुछ-न-कुछ क्षय होता है। दोनों में से रस का खिंचाव होकर तीसरी वस्तु उत्पन्न होती है।

उत्पादन-शक्ति = पुरुष = उत्पत्ति-क्रिया। रजोगुण - विशिष्ट पालिनी शक्ति = स्त्री = स्थिति-क्रिया। सत्व-गुण-विशिष्ट दोनों का संयोग = लय-क्रिया = तमो-गुण-विशिष्ट।

सृष्टि लुप्त न हो, इसके लिए उत्पादन-प्रधान होने से पालिनी शक्ति को अधीन होना पड़ता है। अतएव पुरुष से स्त्री का स्थान पीछे नहीं है, अपितु 'अधीन' कहा जा सकता है। स्त्री चुम्बक है और पुरुष लोहा।

बहुत समय से स्त्रियों को यही प्रतीत होता है कि उनका स्थान पुरुषों से पीछे है और वे चाहती हैं कि जो अधिकार पुरुषों को प्राप्त है, वे उन्हें भी मिलने चाहिए। यह माँग श्रीमती गार्गी ने राजा जनक के सम्मुख रखी थी और जनक के दरबार में शास्त्रार्थ भी हुआ था। शास्त्रार्थ में श्री याज्ञवल्क्य और श्री कण्व ऋषि भी उपस्थित थे। गार्गी देवी बिलकुल नग्न हो, हाथ में तलवार लेकर सभा में आईं। उनके पीछे स्त्रियों का दल था। पुरुष के समान यदि सभी अधिकार प्राप्त न हों, तो पुरुषों के विरुद्ध तलवार उठाने की धमकी दे रही थीं। शास्त्रार्थ में याज्ञवल्क्य ने पुरुषों की हार स्वीकार कर ली क्योंकि स्त्री और पुरुष दोनों ईश्वर के अंश हैं। यदि ये दोनों आपस में झगड़ेंगे, तो संसार का क्षय हो जायगा। अतएव ऐसा न करने के लिए श्रीमती गार्गी से आग्रह-पूर्वक अनुरोध किया गया।

वर्तमान काल में स्त्रियों ने पुनः आन्दोलन प्रारम्भ किया है क्योंकि इधर पुरुषों ने स्त्री - जाति पर भयङ्कर अत्याचार किए हैं। उदाहरणार्थ घर में बहू के आने पर फिर उसका मृत देह ही घर के बाहर निकल सकता है--ऐसा नियम प्रचलित हो गया था। इस प्रकार बेचारी जन्म भर घर में ही बन्द रहती थी ! बाहर वह निकलने ही नहीं पाती थी। इस प्रकार भारत में पुरुषों ने स्त्रियों को बहुत दबा रखा। अब समय के बदलने पर यदि स्त्री पुरुष से 'तलाक' लेने न्यायालय में जाती है, तो यह स्त्रियों पर हुए पिछले अत्याचारों की प्रति-क्रिया ही है। दूसरा विश्व - युद्ध समाप्त होने के बाद २०-२५ वर्ष के भीतर स्त्रियों ने पुरुषों के समान बहुत कुछ अधिकार प्राप्त कर लिया है। अब तो स्त्रियों का स्थान समाज में पर्याप्त उन्नत हो चुका है।

वन्दे मातरम्

महा-मन्त्र 'वन्दे-मातरम्'

की

महिमा, परम्परा

एवं

साधना

का

अपूर्व विवरण

मूल्य : पाँच रुपये

दुर्गा

श्री रमाचरण, 'मातृ - चरणों का मधुव्रत'

प्रात समय उठि सुमिरौ रे मन ! दुर्गा दुर्गति-नाशिनी को रे !
मिटत निशा ज्यों सूर - उदय ते, भव-तम सुमिरे अक्षर दो रे ।।
गनिका गींध अजामिल हू ते, बाढ़ि कोउ पतित पातकी जो रे !
'दुर्गा, दुर्गा' नाम उचारत तरत, सहज भव - वारिधि को रे ।।
साधु-असाधु स्वपच नारी-नर, शूद्र द्विजाति कोउ किन हो रे !
'दुर्गा' नाम परम जननी - सम, लखत न कबौं भेद एको रे ।।
सुन्दर, सरस, सरल अक्षर - द्वय तजि, क्यों रहत, चित्त मुँह मोरे ?
गलित करत, याते 'दुर्गा' - पद, दुरित-दुरद-दल के रद को रे ।।

जय काली

श्री रमाचरण, 'मातृचरणों का मधुव्रत',

जय काली, जय काली - काली, जय काली, जय काली ।
जय दुर्गे, जय दुर्गे - दुर्गे, जय तारे, जय काली ।। जय० ।।
जननि जग - कारिणि अम्बे ! निखिल विश्व प्रतिपाली ।
सुर - नर - नाग - नमित - पद-कमले, शिव-मन-सरसि मराली ।। जय० ।।
कमले कमलालये कमल, कर - कमल विलोचन शाली ।
नीला, पीता, गौरी, श्वेता, अरुणा श्यामा काली ।। जय० ।।
दुर्गा, चण्डी, महिष - मर्दिनी, भीमा, काल - कराली ।
बाले बाल - दिनेश - रुचिर तनु, अतिशय शोभा - शाली ।। जय० ।।
श्री भुवनेशी, त्रिपुर - सुन्दरी, राजेश्वरी, भव - शाली ।
दया - मयी करुणा पयोधरा, औढर ढरनि कृपाली ।। जय० ।।

रजि सं० ३२९८१ / ५७]   अक्टूबर, १९९१   [रजि० सं० ए० डी०-९६
मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक : ऋतशील शर्मा, एम० ए०

श्री भैरवोपदेश

निष्काम-योग, अध्यात्म-योग, विज्ञान-योग, राज-योग, हठ-योग, भक्ति-योग, मन्त्र-योग, नाद-योग, लय-योग, ध्यान-योग, विचार-योग आदि पुष्प प्रकाशित हो चुके हैं।

मूल्य ३६-०० रु०

मन्त्र-कोष

चार शोध-पूर्ण खण्ड एक जिल्द में

- पञ्चायतन खण्ड
- दश महा-विद्या खण्ड
- विविध मन्त्र संग्रह
- वर्ण-बीज-कोष

मूल्य ५५-०० रु० । सजिल्द मूल्य ६५-०० रु०